प्रकाशक—
रत्नाश्रम, आगरा ।



मुद्रक—
चन्द्रहंस शर्म्मा विशारद
रत्नाश्रम फा० आ० प्रिं० व० आगरा ।

महाकवि तुलसीदास

संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लयो ।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो ॥

—नाभाजी

जन्मकालीन परिस्थिति ।

उस समय संसार की सबसे पुरानी सभ्यताभिमानिनी जाति का जीवन घोर संकट में फँस चुका था । प्रेम, सौहार्द्र और सहानुभूति के पवित्र बन्धन जीर्ण हो चुके थे । इर्षा, द्वेष, कलह और वाह्याडम्बरों ने आर्य-कालीन निःश्रेयस और अभ्युदय वाले आदर्शों को एक दम विलुप्त कर दिया था । अहम्मन्यता-जन्य मिथ्या ज्ञान का चारों ओर प्रसार हो रहा था । इन्द्रिय जन्य विलासिता ने जीवन की प्रगति ही बदल दी थी । समाज की कुत्सित और घृणित भावनाएँ स्वार्थ क्षेत्र में ताण्डव नृत्य कर रही थीं । "गुरु शिष अन्ध बधिर कर लेखा, एक न सुनहि एक नहिं देखा" के चारों ओर ज्वलन्त उदाहरण दिखाई पड रहे थे । वैदिक धर्म की शाखा प्रशाखाओं की मत विभिन्नता शत्रुता के रूप मे परिणत हो चुकी थी । साहित्य म कुत्सित और विलासी भावों ने स्थान पाकर जनता के हृदय और मस्तिष्क को कलुषित कर दिया था उस समय की आन्तरिक स्थिति तो ऐसी थी ही, वाह्य परिस्थिति भी नितान्त निरापद नहीं थी । तीन चार सौ वर्ष पर्य्यन्त क्रमागत आक्रमणों से भारत के अधिकांश विभागों में यवन-प्राधान्य स्थापित हो चुका था । एक ओर सैनिक-शक्ति का केन्द्र राजा मानसिंह व राजा पृथ्वीसिंह अकबर के दरबारी होने का गर्व करते थे, दूसरी ओर राजा बीरबल और टोडरमल मुगल साम्राज्य

के विस्तार का उपाय ढूढ निकालने में तत्पर थे। राष्ट्र के कवि, मुगल सम्राट् के यशोगान का, और पण्डित, सम्राट् की विद्वत्परिषद में वाद प्रतिवाद का अवसर पा जाने को पूर्ण सौभाग्य समझते थे। इस प्रकार जब कि हिन्दू जाति का भाग्याकाश घोर अनिष्टान्धकार से व्याप्त था, उसी समय प्रकाशमान पिण्ड के रूप में महाकवि गोस्वामी तुलसीदास का प्रादुर्भाव हुआ।

प्रारम्भिक जीवन।

प्राय महाकवि का आविर्भाव काल सवत् १५८९ विक्रमी माना जाता है। इनका जन्म स्थान राजापुर है और कुछ लोग तारी गाँव को यह गौरव देते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि अभिजित नक्षत्र में जन्म होने के कारण माता पिता ने इनको त्याग दिया था। इनके पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम तुलसी था। दीनबन्धु पाठक की रत्नावली कन्या के साथ इनका पाणि ग्रहण हुआ था।

अपनी स्त्री के साथ इनका अगाढ प्रेम था। उसका आँखों से ओझल होना इन्हें असह्य था। अनेक आग्रह होने पर भी रत्नावली को उसके पिता के घर न भेजा। एक बार भाई के साथ विना आज्ञा लिए ही देवी चली गई। जब तक वह पहुँच ही पाई थी कि महाराज जी जा धमके। इस कारण से रत्नावली को बड़ी ग्लानि हुई। उसी अवस्था में यह उद्गार उनके हृदय से निकल पड़े,—"मेरे इस पार्थिव-शरीर में आपका इतना स्नेह है, यदि यही स्नेह श्रीरघुनाथ जी के चरणकमलों में होता तो बेड़ा पार था।"

बस, यहीं से हमारे चरितनायक के विकास का श्रीगणेश है। जो प्रेम की अविरल धारा रत्नावली के लिए सचालित हो रही थी, वही अब से हरि-पद पकजों की ओर बहने लगी। उनके हृदय-पटल खुल गये, माया का

पर्दा उठ गया, मोहतम हट गया रत्नावली का आरोप सारे विश्व में हुआ। व्यष्टि, समष्टि रूप में प्रकट हुई। प्रणय ने भक्ति का भेष बदला।

एक छोटे से परिवारी से "वसुधैव कुटुम्बकम्" वाले हुए। ससार-त्याग के पीछे आपने पुन अपने गुरु की शरण ली। यहीं पर इनका पालन-पोषण हुआ था और यहा पर इन्हों ने शिक्षा पाई थी। विद्वानों और साधुओं का सत्सग किया। पहले के अनिच्छिन्न रूप से प्रवेश किये हुए सस्कार धीरे धीरे जागृत हो चले। सरस्वती के इस लाडिले पुत्र ने नाना पुराण, निगम और आगमों का अध्यन किया। जो कुछ देखा, हृदय तक पहुँचा, जो कुछ सुना मस्तिष्क में घुमडाया। "जहाने सूरत ना जर्रा २ जमाल (ए) माना का आइना" बन गया। इस प्रकार जीवन क्षेत्र की दुर्भेद्य अगम्य घाटियोंको पार कर तुलसी ने इस विस्तृत मैदानमें विचरण किया। गुरु प्रसाद से, "हिय के विमल विलोचन' उघरे और 'भव रजनी के दुख-दोष' दूर हुए। आत्मा में अमरत्व का बीजारोपण हुआ और हृदय में अमृत तत्व का अकुरोद्भव। ऐसे ही समय म इनका रचनाकाल आरम्भ होता है। रामचरित मानस ही इनकी सर्व प्रथम और सर्व प्रिय रचना है। गुसाई जी ने भौमवार चैत्र शुक्ल नवमी स० १६३१ वि० को अयोध्या में यह महाकाव्य प्रारम्भ किया था। पीछे किसी मुख्य हेतु से काशी चले गये, वहाँ पर मानस की पूर्ति हुई। रामचरित मानस के अतिरिक्त उनका "विनय पत्रिका" विनय सम्बन्धी महाग्रन्थ है। भाषा क्लिष्ट होने पर भी इसम पद लालित्य और माधुर्य की कमी नहीं है। रचना-शास्त्र विशारदों की दृष्टि म यह गोस्वमी जी की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इनके अतिरिक्त गीतावली, दोहावली कवितावली, कृष्णगीतावली, रामललानहछू, वैराग्य सन्दीपनी, बरवारामायण पार्वतीमगल, जानकी-मगल, रामाज्ञाप्रश्न, कलिधर्म निरूपण आदि अनेक रचनाएँ है।

वस्तु और उसका विकास।

महाकवि ने जिस मुख्य वस्तु (मूल ढाँचे) पर अपना दिव्य और भव्य रचना प्रासाद खडा किया है वह न तो स्वकल्पित है और न किसी

रचना-सौष्ठव ।

वस्तु निर्देश और उसके विन्यास करने में कवि पूर्ण स्वतन्त्र होता है, परन्तु अन्य बातों में साहित्यशास्त्र के चिरमान्य नियमों का यथाशक्ति पालन करने के लिये उसे बाध्य होना पड़ता है।

अलंकार शास्त्रियों ने उत्कृष्ट रचना के लिये तीन गुणों की आवश्यकता बतलाई है, शक्ति, व्युत्पत्ति और अभ्यास। पूर्व संस्कार जन्य दैवी चमत्कार ही शक्ति है। परम श्रद्धावान् भगवद्भक्ति की दृष्टि में यह पूर्व संस्कार जन्य शक्ति भगवद् कृपा के सिवाय और क्या है!

"जापर कृपा करहिं जन जानी।
कवि-उर अजिर नचावहिं बानी॥"

सर्व प्रिय राम चरित मानस का निर्माण ही इनका प्रथम कौशल है। उसमें कहा है —

"कवि न होउँ नहिं चतुर प्रवीनू।
सकल कला सब विद्या हीनू॥
आखर, अरथ अलंकृत नाना।
छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना॥
भाव—भेद रस—भेद अपारा।
कवित-दोष गुन-विविध प्रकारा॥
कवित—विवेक एक नहिं मोरें।
सत्य कहौं लिखि कागद कोरें॥"

आखर, अर्थ, अलंकार, छन्द प्रबंध, भाव और रसों का ज्ञान, रचना के लिये कितना आवश्यक है और गोस्वामीजी इनका ज्ञान न रखने के लिये कोरे कागज़ पर लिखकर शपथ कर रहे हैं। कुछ लोग समझेंगे, कि उनका यह महज तकल्लुफ है, कोरा दिखावा है, शायरों की सी आजिजी है, किन्तु दोहावली में कहा है —

इन्हीं अपार भावों की अभिव्यक्ति पर ही काव्य के उत्कर्ष का स्थायित्व है। महाकवि की रचना में भावों की अभिव्यक्ति का अपूर्व कौशल है। देखिये —

"भैया कहहु कुशल दोउ बारे,
तुम नीके निज नयन निहारे।"

इस सीधे-सादे शब्दों में प्रसाद गुण के साथ कितना लालित्य और माधुर्य है। वात्सल्य भाव मे सराबोर अयोध्या के वृद्ध सम्राट् राजा दशरथ के हृदय का कैसा कोमल और स्निग्ध चित्र है। राजा जनक के दूत —एलची नहीं धावक हरकारे—राम, लक्ष्मण के कुशल समाचार लेकर अयोध्या में आये हैं। अत्यन्त हित से झटपट पास बिठाकर मधुर, मनोहर वचनों में पूछते है, —"भैया! दोनों बारे सकुशल हैं?" इतना ही पूछ कर उत्तर की प्रतीक्षा नहीं करते। आगे कहते हैं "तुमने अपनी आँखों से भी देखा है?" पुत्र प्रेम में तल्लीन राजा की मनोवृत्ति किस प्रकार तरंगित होती है! पत्र मे उन्हें सन्तोष नहीं। वह धावकों की आँख में आँख मिलाकर स्वयं देखना चाहते हैं। "दर्शनोत्सुक्य" का कितना प्रबल भाव है! दूत उत्तर देते हैं —

किशोर अवस्था है, साँवला और गोरा रंग है, धनुष बाण लिए हुए विश्वामित्र के साथ है इस चित्रकारी से काम न चला, कहते हैं "जो देखा तो कहौ स्वभाऊ" इतने पर मनोवेग स्थिर हुआ और लम्बी साँस के साथ निकल पड़ा —

"जा दिन ते मुनि गये लिवाई।
तब ते आजु साँच सुधि पाई॥"

दूसरा उदाहरण लीजिए। इस महा नाटक का आनन्द दृश्य सामने है। राम के ब्याह के पीछे "नित नव मंगल मोद बधाये" हो रहे हैं। कल्लोल करती हुई रिधि सिधि-सम्पति की नदियाँ अवधअम्बुधि मे गिर रही हैं। रामचन्द्र का मुख चन्द्र देखकर सब विधि मे पुर-लोग सुखी हैं।

मनोरथ बेलि फलित देखकर सब सखी सहेली सहित माताएँ मुदित हैं। राम के रूप गुण शील और स्वभाव को देखकर राजा प्रमुदित हैं। "सब पायउ प्रभु, पद रज पूजे" वाले युग में एक चिन्ता हृदय में तरंगित हो उठी है। राज सूत्र राम के हाथ में दे दिया जाय, इसके लिये भी गुरु ने आज्ञा दे दी। तैयारी होने लगी। दासी मन्थरा को यह सब अच्छा न लगा, हृदय में विरोधी भाव जागृत हुए। ईर्षा और द्वेष ने उसके मस्तिष्क में खलबली मचा दी। इस आयोजन को विफल करने के लिये युक्ति सोची। रानी कैकई से जाकर कहा।

देखती नहीं हो राजा का कपट जाल! विलास में मग्न हो, यदि राम राजा हो गये तो तुम्हारा कल्याण नहीं? सुनते ही कैकई का अन्तःकरण आन्दोलित हुआ! हृदयस्थ भावों के नितान्त विरुद्ध बात असह्य हुई। क्रोधावेश हो आया —

'पुनि असि कबहुँ कहसि घरफोरी।
तो धरि जीह कढ़ावहुँ तोरी॥"

कहते कहते आवेश कम हो चला। कुछ तर्क और विवेक ने अपना काम किया—निष्कर्ष निकला —

"काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय विशेष पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसिकानि॥"

ऐसी कुचाल करने के लिये काने, खोरे होने का दोष ही पर्याप्त था। स्त्री और स्त्रियों में भी चेरी होनेसे वह दोष (कारण) और भी प्रबल हो गया, तो भला ऐसी कुटिलता क्यों न करें? स्वभाव से ही ऐसे लोग ऐसा करते हैं। इन बातों को कहते ही रानी मुस्करा गईं यह मुस्कराहट उपेक्षा सूचक है। इतने पर भी रानी से चुप नहीं रहा गया, कहने लगी—

प्रियबादिनि, सिख दीन्हेउ तोहीं,
सपनेउ तो पर कोप न मोहीं॥"

जो हो, इस राजवंश के परिचय के साथ २ अन्य कुछ व्यक्तियों का परिचय देना भी उचित है—जिनके कारण रामायण की कथा में सोने में सुगन्ध आगई है। जिनमें से एक तो—

सुमन्त

जो, अयोध्या के राजवंश के सच्चे सेवक और हितैषी थे। महाराज की गुप्त-मंत्रणाएँ प्राय: इनसे ही हुआ करती थीं। यह बहुत ही उदार और सहृदय थे। रामचन्द्र जी इन्हें सदैव पूज्य दृष्टि से देखते थे।

"तुम पुनि पितु सम अति हित मोरे।
बिनती करउँ तात कर जोरे॥"

रामचन्द्र को पहुँचाकर जब वन से सुमन्त लौटे तो उनकी बहुत ही शोचनीय अवस्था हो गई, इसका वर्णन कल्पनातीत है, एक उदाहरण से कवि ने उस समय की अवस्था का चित्र खींचा है—

"जिमि कुलीन तिय साधु सयानी।
पति देवता कर्म मन बानी॥
रहै कर्म बस परिहरि नाहू।
सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू॥"

क्या ही दारुण वेदना है। इससे—

"बिबरन भयो न जाइ निहारी।
मारेसि मनहुँ पिता महतारी॥
हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी।
यमपुर-पथ सोच जनु पापी॥"

ऐसी दशा में—

हृदय न बिदरत पंक जिमि बिछुरत पीतम नीर।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यम-यातना सरीर॥

और राम को मागा, उस समय दशरथ जी बड़े चक्कर में ✓
गये, कहा—

माँगहु भूमि धेनु धन कोषा।
सर्वस देहुँ आज सह रोषा॥
देह प्राण ते प्रिय कछु नाहीं।
सोउ मुनि देहुँ निमिष इक माहीं॥

इतना तो बात की बात मे दे सकता हूँ। पर राम के देने मे कुछ सकोच है। मैं ससैन्य चल सकता हूँ। राक्षसो से लड कर उनके अत्याचार से अपने देश को बचा सकता हूँ। परन्तु राम सुकुमार है, बच्चे हैं "घोर मायावी असुरों के मुकाबिले में उन्हे भेजना" समझ मे नहीं आया—

'चौथे पन पायेउ सुत चारी।
विप्र बचन नहिं कहेउ सँभारी॥"

अस्तु। थोडी देर के लिये मर्वस्व दे सकने पर भी पुत्र के न देने का विचार जी मे रहा। वशिष्ठ जी ने समझाया कि भारत-माता की छाती से राक्षसी अत्याचार, यदि तुम्हारे पुत्र के द्वारा दूर हो जाय तो तुमसा भाग्यवान कौन होगा ? राजा का मोह दूर हो गया देश और धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राण से प्यारे पुत्रों को ऋषि के अर्पण कर दिया। धन्य त्याग !

इतने गुण होते हुए भी एक अवगुण था—राजा ने क विवाह किये। इसी कारण गृह-कलह हुआ।

वृद्ध अवस्था में भी वह सयमी न रहे। कामान्धता से कैकेर की चालों को न समझ सके, उससे प्रतिज्ञा कर बैठे। परन्तु प्रतिज्ञा को किस प्रकार निबाहा, यह इतिहास के पत्रों पर स्वर्णाक्षरो में लिखा हुआ है—

"जियन मरन फल दसरथ पावा। अड अनेक अमल जस छावा॥
जियत राम बिधु बदन निहारा। राम विरह मरि मरन सँभारा॥"

समर मरन, पुनि सुरसरि तीरा ।
राम काज, छिन-भगु सरीरा ॥
भरत भाइनृप, मैं जन नीचू ।
बड़े भाग अस पाइय मीचू ॥

अस्तु ! अपढ़ जंगली जाति के नायक के आत्म बलिदान की समता क्या किसी सभ्य जाति के इतिहास में कहीं मिल सकती है ?

॥ इति ॥

आगरा
श्रावण कृ ०॥ ५
सं० १९७८ वि०

अध्यापक रामरत्न ।



आदि, पश्चात्ताप करते हुए अयोध्या आए। अँधेरे मे नग
प्रवेश किया। खाली रथ देखकर लोगों की रही सही आशा भी
टूट गई। अयोध्या पहुँचकर स्वय धीरज बाँधा और बडे पाटित्य
पूर्ण भाषण द्वारा राजा को समझाने की चेष्टा की, पर अन्त
"हरीच्छा बलीयसी" ही रहा।—अस्तु।

दूसरे निषाद पति —

गुह

थे, जिनका चरित्र भी पवित्र प्रेम से भरा हुआ और अवि
उज्ज्वल था। रामचन्द्र जी से इनका घनिष्ठ स्नेह हो गया
था। वन में जब रामचन्द्र साथरी पर सो रहे थे और
लक्ष्मण धनुषबाण ले पहरा दे रहे थे, निषाद भी उनके पास
जा पहुँचा।

"सोवत प्रभुहि निहारि निषादू।
भयउ प्रेम-बस हृदय बिषादू॥
तनु पुलकित जल लोचन बहही।
बचन सप्रेम लखन सन कहही॥"

इस समय जो दुख से भरी हुई बातचीत गुह ने की
जिससे उसकी सहृदयता का पता चलता है। इसके सिवाय व
बडा भारी वीर भी था। जब यह अनुमान हुआ कि भरत ससैन्
राम से लडने जाते हैं—तो अपनी सेना को लडने की आज्ञा दी
असहाय राम पर ससैन्य भरत चढकर जाते हैं, जीते जी ह
इस अन्याय को कैसे सहें—

होहु सजोइल रोकहु घाटा।
ठाटहु सकल मरन कै ठाटा॥
सनमुख लोह भरत सन लेहू।
जियत न सुरसरि उतरन देहू॥

॥ श्री ॥

श्रीमद्गोस्वामी

तुलसीदास कृत रामायणम्

अयोध्याकाण्ड प्रारम्भः

यस्याङ्के च विभाति[1] भूधरसुता[2], देवापगा[3] मस्तके,
भाले बालविधुर्गले च गरलं, यस्योरसि व्यालराट्[4] ।
सोऽयं[5] भूतिविभूषणः, सुरवरः, सर्वाधिपः सर्वदा[6],
शर्वः[7], सर्वगतः, शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु माम्[8] ॥१॥
प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ॥
मुखाम्बुजश्रीरघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा ॥२॥
नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्, सीतासमारोपितवामभागम् ॥
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥३॥

अर्थ —जिनके अङ्क में पार्वतीजी, सिर पर गंगाजी मस्तक पर नवीन चन्द्रमा, गले में विष, हृदय पर सर्पराज का यज्ञोपवीत, शोभित है। भस्म रमाए, देवताओं में श्रेष्ठ, सबके स्वामी, अविनाशी, संहार करने वाले सर्वव्यापी, कल्याणकारी तथा चन्द्रमा के समान गौरवर्ण ऐसे श्रीमहादेव जी मेरी सदैव रक्षा करें ॥१॥

राज्याभिषेक से प्रसन्नता को और वनोवास के दुःख से मलिनता को प्राप्त नहीं हुई ऐसी श्री रामचन्द्र के मुख-कमल की शोभा, मुझे कल्याण की देने वाली हो ॥२॥ नील कमल के समान सुन्दर श्याम और कोमल अंग वाले, जिनके वाम भाग में जानकी जी विराजमान हैं, हाथों में सुन्दर धनुषबाण हैं ऐसे रघुवंश के स्वामी श्रीरामचन्द्र को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३॥

१ सुशोभित २ पार्वती ३ (देव+अप+गा) गंगाजी ४ नागराज ५ (स अयम्) ६ अविनाशी ७ संहारकर्ता ८ मेरी रक्षा करें ।

1

॥ श्री ॥

श्रीमद्गोस्वामी

तुलसीदास कृत रामायणम्

अयोध्याकाण्ड प्रारम्भः

यस्याङ्के च विभाति[1] भूधर-सुता[2], देवापगा[3] मस्तके,
भाले बालविधुर्गले च गरलं, यस्योरसि व्यालराट्[4] ।
सोऽयं[5] भूतिविभूषणः, सुरवरः, सर्वाधिप सर्वदा[6],
शर्वः[7], सर्वगतः, शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु माम्[8] ॥१॥
प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ॥
मुखाम्बुजश्रीरघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा ॥२॥
नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्, सीतासमारोपितवामभागम् ॥
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥३॥

अर्थ — जिनके अङ्क में पार्वतीजी, सिर पर गंगाजी मस्तक पर नवीन चन्द्रमा, गले में विष, हृदय पर सर्पराज का यज्ञोपवीत, शोभित है। भस्म रमाए, देवताओं में श्रेष्ठ, सबके स्वामी, अविनाशी, संहार करने वाले सर्वव्यापी, कल्याणकारी तथा चन्द्रमा के समान गौरवर्ण ऐसे श्रीमहादेव जी मेरी सदैव रक्षा करें ॥१॥

राज्याभिषेक से प्रसन्नता को और बनोवास के दुःख से मलिनता को प्राप्त नहीं हुई, ऐसी श्री रामचन्द्र के मुख-कमल की शोभा, मुझे कल्याण की देने वाली हो ॥२॥ नील कमल के समान सुन्दर श्याम और कोमल अंग वाले, जिनके वाम भाग में जानकी जी विराजमान हैं, हाथों में सुन्दर धनुषबाण है ऐसे रघुवंश के स्वामी श्रीरामचन्द्र को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३॥

१ सुशोभित २ पार्वती ३ (देव+अप+गा) गंगाजी ४ नागराज ५ (स अयम्) ६ अविनाशी ७ संहारकर्ता ८ मेरी रक्षा करें।

दोहा—श्रीगुरु चरन-सरोज[1]-रज, निज मन मुकुरु[2] सुधारि ।
　　वरनउँ-रघुवर-विमल-जसु, जो दायकु फल चारि[3] ॥

जब तें राम व्याहि घर आये । नित-नव-मगल मोद वधाये
भुवन-चारिदस भूधर-भारी । सुकृत[4] मेघ वरषहिं सुख-वारि
रिधिसिधि-सपति-नदी सुहाई । उमगि अवध-अवुधि कहँ आ
मनिगन-पुर-नर-नारि-सुजाती । सुचि-अमोल-सुन्दर सब भाँत
कहि न जाइ कछु नगर विभूती । जनु इतनिअ विरचि-करतूत
सब विधि सब पुर-लोग सुखारी । रामचन्द्र-मुख-चन्दु[5] निहारी
मुदित मातु सब सखी सहेली । फलित[7] विलोकि मनोरथ-वेली
रामरूप गुन सीलु सुभाऊ । प्रमुदित होहिं देखि सुनि राऊ

दोहा—सब के उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु ।
　　आपु अछत[8] जुवराजपद, रामहिं देहि नरेसु ॥

एक समय सब सहित समाजा । राज-सभा रघुराजु विराजा
सकल-सुकृत-मूरति नरनाहू । राम-सुजसु सुनि अतिहि उछाहू
नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे । लोकपछ रहहिं प्रीति-रुख राखे
त्रिभुवन तीनि काल जग माहीं । भूरि-भाग[10] दसरथ सम नाहीं
मगल-मूल रामु सुत जासू । जो कछु कहिअ थोर सबु तासू
राय सुभाय मुकुर[11] कर लीन्हा । वदनु विलोकि मुकुट सम कीन्हा

---

१ (सर + ज) कमल २ दर्पण ३ अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ४ पुण
५ अवधरूपी समुद्र ६ (चन्द्रमा रूपी मुँह) ७ फलती हुई (कर्मवाच
८ मौजूदगी ९ उत्साह १० बड़ भागी ११ दर्पण ।

❀ पहले ही पद्य में तुलसीदास जी अलङ्कार-चमत्कार किस सूरी
दिखा रहे हैं, इस पद्य में सम अभेद रूपक है ।

❀ देखो गूढ़ार्थ प्रकाश ।

वन[1] समीप भए सित केसा। मनहुँ जरठ-पनु अस उपदेसा॥
प जुवराजु राम कहुँ देहू। जीवन-जनम-लाहु किन लेहू॥
दो०—यहि विचारु उर आनि नृप, सुदिन सु-अवसरु पाइ।
प्रेम पुलकि तन, मुदित मन, गुरहि सुनायेउ जाइ॥
हइ सुआलु[2] सुनिअ मुनि नायक। भये राम सब विधि सब लायक॥
सेवक सचिव सकल पुर बासी। जे हमार अरि मित्र उदासी॥
सबहिं रामु प्रिय जेहि विधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही॥
बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोहु[3] सब रौरिहि नाईं॥
जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल विभव बस करहीं॥
मोहि सम यहु अनुभयेउ न दूजें। सब पायेउँ प्रभु पद-रज पूजें॥
अब अभिलाषु एक मन मोरे। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरें॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज-सनेहू[4]। कहेउ नरेस रजायसु[5] देहू॥
दो०—राजन, राउर नामु-जसु, सब अभिमत[6] दातार।
फल अनुगामी महिप मनि[7], मन अभिलाषु तुम्हार॥४॥
व विधि गुरु प्रसन्न जिय जानी। बोलेउ राउ निहँसि मृदु-बानी॥
ाथ, रामु करिअहि जुवराजू। कहिय कृपाकरि करिअ समाजू॥
ोहिं अछत यहु होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन-लाहू॥
भु-प्रसाद सिव सबइ निबाहीं। यह लालसा एक मन माहीं॥
ुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहि न होइ पाछे पछिताऊ॥
ुनि मुनि दसरथ बचन सुहाए। मंगल मोद-मूल मनभाए॥
सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं॥

---

१ (श्रवण) कान २ (भूपाल) राजा ३ कृपा ४ स्वभाव से ही स्नेह है जिनमें, (बहुव्रीहि) ५ आज्ञा ६ इच्छाओं ७ (महिपों में शिरोमणि, सप्तमी तत्पुरुष)।

* राजन्, आपका नाम और यश सब इच्छाओं को पूरा करने वाला है। हे महिप मणि, चारों फल आपकी मनोऽभिलाषाओं के पीछे पीछे चलते हैं—अर्थात् कोई मनोरथ आपका छूँछा नहीं पड़ता।

भयेउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी । रामु पुनीति प्रेम अनुगामी[1] ।

दो०—बेगि बिलंबु न करिअ नृप, साजिअ सबुइ समाजु ।
सु-दिन सु-मंगलु तबहिं जब, राम होहिं जुवराजु ॥४॥

मुदित महीपति मन्दिर आए । सेवक सचिव सुमंत बुलाए
कहि 'जय जीव'[2] सीस तिन्ह नाए । भूप सु-मंगल-वचन सुनाए ॥
प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू । 'रामहिं राय देहु जुवराजू' ॥
जौं पाँचहि मत लागइ नीका । करहु हरषि हिय रामहिं टीका[3] ॥
मंत्री मुदित सुनत प्रिय-बानी । अभिमत-बिरव[4] परेउ जनु[5] पानी ॥
बिनती सचिव करहिं कर-जोरी । जिअहु जगत-पति बरस करोरी ॥
जग-मंगल भल काजु बिचारा । बेगिअ नाथ न लाइअ बारा ॥
नृपहिं-मोदु सुनि सचिव सु-भाखा । बढ़त बौंड़[6] जनु लही सु-साखा ॥

दो०—कहेउ भूप मुनिराज कर, जोइ जोइ आयसु होइ ।
राम राज-अभिषेक-हित बेग करहु सोइ सोइ ॥५॥

हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी । आनहु सकल सु-तीरथ पानी ॥
ओषधि मूल फूल फल पाना । कहे नाम गनि मंगल नाना ॥
चामर चरम बसन बहुभाँती । रोम-पाट-पट[7] अगनित-जाती ॥
मनिगन मंगल वस्तु अनेका । जो जग जोगु भूप अभिषेका ।
बेद-बिदित कहि सकल बिधाना । कहेउ रचहु पुर बिबिध-बिताना[8] ।
सफल रसाल[9] पु गफल[10] केरा । रोपहु बीथिन्ह[11] पुर चहुँ फेरा ॥
रचहु मंजु मनि-चौकईं चारू । कहहु बनावन बेगि बजारू ॥
पूजहु गनपति गुरु कुलदेवा । सब बिधि करहु भूमि-सुर-सेवा ॥

---

१ प्रेम के अनुगामी (षष्ठी तत्पु०) २ आर्यकाल में राजा के सम्मुख जाते समय प्रजाजन यह मंगल सूचक पद उच्चारण करते थे। ३ राज-तिलक, ४ इच्छा रूपी पौधे पर, ५ मानो (उत्प्रेक्षालंकार वाचक पद) जब मानों, जानो आदि पदों से एक अर्थ में दूसरे अर्थ की सम्भावना की जाती है। ६ कुम्हड़ा की बे— ७ रेशमी व ऊनी वस्त्र ८ चँदोवा ९ आम १० सुपारी ११ गलियों में

दोहा—ध्वज पताक-तोरन-कलस, सजहु तुरग रथ-नाग[1]।
सिर धरि मुनिवर-वचन सबु निजनिजकाजहिं लाग ॥७॥
जेहि मुनीस जो आयसु दीन्हा। सो तेहि काजु प्रथम जनु कीन्हा॥
विप्र-साधु-सुर पूजत राजा। करत राम-हित मंगल काजा॥
सुनत राम-अभिषेक-सुहावा। बाज गहागह[2] अवध बधावा॥
राम सीय-तनु सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए[3]॥
पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं। भरत आगमनु-सूचक अहहीं[4]॥
भए बहुत दिन अति अवसेरी[5]। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥
भरत-सरिस प्रिय को जगमाहीं। इहइ सगुन-फलु दूसर नाहीं॥
रामहि बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ-हृदय जेहि भाँती[6]॥
दोहा—एहि अवसर मंगलु परम, सुनि रहँसेउ रनिवासु।
सोभत लखि विधु बढ़त जनु, वारिधि बीचि[7] बिलासु ॥८॥
प्रथम जाइ जिन्ह वचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए॥
प्रेम पुलकि तन-मन अनुरागीं। मंगल साज सजन सब लागीं॥
चौकइँ चारु सुमित्रा पूरी। मनि-मयविविध भाँति अतिरूरी[8]॥
आनँद मगन राम महतारी। दिए दान बहु विप्र हँकारी॥
पूजीं ग्रामदेवि-सुर-नागा। कहेउ बहोरि देन बलि भागा॥
जेहि विधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो वरदानू॥
गावहिं मंगल कोकिल-बयनीं[9]। विधु-बदनी मृग-सावक-नयनी॥
दोहा—राम राज अभिषेकु सुनि, हिय हरषे नर-नारि।
लगे सु-मंगल सजन सब, विधि अनुकूल विचारि ॥९॥

---

१ घोड़ा रथ और हाथी २ गहगहे ३ पुरुष का दाहिना और स्त्री का बाँया अंग फड़कना शुभ सूचक माना गया है। ४ हैं ५ चिन्ता ६ कछुआ तट पर अंडे रखकर जिस प्रकार चिन्तित रहता है। ७ लहर, मानो पूर्ण चन्द्र को देख समुद्र में लहरें उठने लगीं (उत्प्रेक्षालंकार) ८ अति सुन्दर ९ कोकिल के बैन समान हैं बैन जिनके आदि (बहुव्रीहि समास)

तव नर-नार वसिष्ठु बुलाये । राम-धाम सिख देन पठाये ।
गुरु-आगमनु सुनत रघुनाथा । द्वार आइ नायेउ पद माथा ।
सादर अरघ[1] देइ घर आने । सोरहु भाँति[2] पूजि सनमाने ।
गहे चरन सिय सहित वहोरी । बोले रामु कमल-कर जोरी ।
सेवक-सदन स्वामि-आगमनू । मंगल-मूल अमंगल-दमनू ।
तदपि उचित जनु बोलि स-प्रीती । पठइअ काज नाथ 'असनीती'[5] ।
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू । भयेउ पुनीत आजु यहु गेहू ।
आइसु होइ सो करउँ गोसाईं । सेवक लहइ स्वामि-सेवकाई ।

दोहा—सुनि सनेह-साने-वचन, मुनि रघुवरहि प्रसंस ।
राम कस न तुम्ह कहहु अस, 'हंस-वंस-अवतंस'[3] ॥१०॥

बरनि राम-गुन सील-सुभाऊ । बोले प्रेम-पुलकि मुनिराऊ ।
भूप सजेउ अभिषेक समाजू । चाहत देन तुम्हहि जुबराजू ।
राम करहु सब संजम[4] आजू । जो विधि कुसल निवाहइ काजू ।
गुरु सिख देइ राउ पहि गएऊ । राम-हृदय अस विसमय भएऊ ॥
जनमे एक संग सब भाई । भोजन सयन केलि लरिकाई ॥
करन बेध उपवीत बिआहा । संग संग सब भए उछाहा ॥
विमल-वंस यह अनुचित[5] एकू । अनुज विहाइ बडेहि अभिषेकू ॥
प्रभु सप्रेम-पछितानि सुहाई । हरउ भगत-मन कै कुटिलाई ॥

दोहा—तेहि अवसर आये लपन, मगन प्रेम आनन्द ।
सनमाने प्रिय वचन कहि, रघुकुल-कैरव-चन्द[6] ॥११॥

---

१ आगन्तुक के स्वागत के लिये पात्र से पृथ्वी पर जल छोड़ना, आर्यकाल की स्वागत विधि । २ देखो गूढ़ार्थ कोष ३ हंस (सूर्य) के वंश षष्ठी तत्पु० हंस वंश मे अवतंस (भूषण) सप्तमी तत्पु० । ४ व्रत, नियम ५ यद्यपि नीति उचित समझती है परन्तु राम का स्वार्थत्यागी हृदय इसे अनुचित समझता है । ६ रघुकुल रूपी कैरव, (रूप्य-रूपक भाव में रूपक कर्मधारय,) रघुकुल रूपी करव के लिये चन्द्रमा रूप-पर-परित रूपक ।

बाजहिं बाजन विविध विधाना । पुर प्रमोदु नहिं जाय बखाना ॥
भरत आगमनु[१] सकल मनावहिं । आवहिं बेगि नयन फल पावहिं ॥
हाट बाट घर गली अथाईं[२] । कहहिं परसपर लोग लोगाईं ॥
कालि लगन[३] भलि केतिक बारा । पूजिहि विधि अभिलाषु हमारा ॥
कनक सिंघासन सीय समेता । बैठहिं राम होय चित-चेता[४] ॥
सकल कहहिं कब होइहि काली । बिघन मनावहिं देव कुचाली ॥
तिन्हहि सोहाइ न अवध-बधावा । चोरहिं चाँदनि राति न भावा ॥
सारद बोलि विनय सुर करहीं । बारहिं बार पाँय लै परहीं ॥

दो०—विपति हमारि विलोकि बडि, मातु करिअ सोइ आजु ।
रामु जाहिं बन राजु तजि, होइ सकल सुर-काजु ॥

सुनि सुर विनय ठाढि पछिताती । भइउँ सरोज-विपिन-हिमराती ॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी । मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी[५] ॥
विसमय-हरष-रहित[६] रघुराऊ । तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ ॥
जीव करम-बस दुख-सुख भागी । जाइअ अवध देवहित लागी ॥
बार बार गहि चरन सकोची । चली विचारि विबुध[७] मति पोची ॥
ऊँच निवासु नीच करतूती । देखि न सकहिं पराइ विभूती[८] ॥
आगिल काजु विचारि बहोरी । करिहहिं चाह कुसल कवि मोरी ॥
हरषि हृदय दसरथ-पुर आई । जनु ग्रह-दसा[९] दुसह दुख दाई ॥

दो०—नामु मथरा, मंद मति, चेरि कैकेइ केरि ।
अजस पेटारी[१०] ताहि करि गई गिरा[११] मति फेरि ॥१२॥

दीख मथरा नगर-बनावा । मंगल मंजुल बाजन बधावा ॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू । 'राम तिलकु' सुनि भा उर दाहू ॥

---

१ आना (भाव वा० संज्ञा) २ (अथाई) चौपाल, बैठक । ३ मुहूर्त ४ स्फूर्ति, आनन्द ५ गरज, अपराध ६ सुख दुःख से रहित । (अपादान कारक में) ७ देवता ८ वैभव ९ जन्म राशि से ४, ८, १२ स्थान पर शनिश्चर, राहु, मंगल आदि क्रूरग्रह हों तो कुदशा होती है । १० बुराई की पिटारी ११ सरस्वती

करइ विचारु कुबुद्धि-कुजाती । होइ अकाजु कवनि बिधि रा
देखि लागि मधु कुटिल किराती । जिमि गौं-तकई[1] लेउँ केहि भाँ
भरत मातु पहि गइ बिलखानी । 'का अनमनि' हसि कह हँसि रा
ऊतरु देइ न लेइ उसासू । नारि-चरित करि ढारइ आँ
हँसि कह रानि गालु बड तोरें । 'दीन्ह लखन सिख' अस मन
तबहुँ न बोलि चेरि बडि पापिनि । छाँडइ स्वास कारि जनु साँपिनि

दो०—सभय रानि कह 'कहसि किन'[2] कुसल रामु महिपालु ।
लखनु-भरतु रिपु-दमनु ?, सुनि भा[3] कुबरी-उर सालु[4] ॥१

कत सिख देइ हमहिं कोउ माई । गालु करब केहि कर बलु पा
रामहि छाँडि कुसल केहि आजू । जेहि जनेसु देहि जुवरा
भयउ कौसलहि बिधि अति दाहिन । देखत गरब रहत उर नाहि
देखहु कस न जाइ सब सोभा । जो अवलोकि मोर मनु छोभा
पूतु बिदेस, न सोचु तुम्हारे । जानतिहहु 'बस नाह हमारे
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई[5] । लखहु न भूप कपट-चतुरा
सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी । झुकी[6] रानि अब रहु अरगा
पुनि अस कबहुँ कहसि घर-फोरी[8] । तब धरि[9] जीह कढावौं तोरी

दो०—'काने खोरे *कूबरे, कुटिल कुचाली जानि ।
तिय बिसेषि पुनि चेरि, कहि भरत मातु मुसुकानि ॥ १

प्रिय बादिनि[10] सिख दीन्हिउँ तोही । सपनेहु तो पर कोपु न मोही
सु दिनु सु-मंगल-दायकु सोई । तोर कहा फुर[11] 'जेहि दिन हो
जेठ स्वामि, सेवक लघु भाई । एहु दिन कर कुल रीति सोहा

---

१ घात लगाती है । २ क्यों नहीं ३ हुआ ४ पीडा ५ तोशक, त
६ झिडक कर ७ चुप ८ घर में फूट डालने की बात ९ पकड
१० मिठ बोली (बहुव्रीहि समास) ११ सत्य ।

*दुन्दुभी नामक गन्धर्वी शापवश कुबडी स्त्री होकर कैकेई की दा
सी थी । यह तीन जगह से टेढी थी इसका नाम त्रिवक्रा भी था ।

राम तिलकु जौं साँचेहु काली। देउँ माँगु मन भावत आली॥
कौसिल्या सम सब महतारी। रामहि सहजसुभाय[1] पियारी॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी। मैं करि प्रीति परीच्छा देखी॥
जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहु राम-सिय पूत-पतोहू[2]॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्ह के तिलक छोभु कस तोरें॥
दो०—भरत सपथ तोहि, सत्य कहु, परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमय करसि, कारन मोहि सुनाउ॥१६॥
एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीह करि दूजी॥
फोरइ जोगु कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रौरेहि लागा॥
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि, करुइ मैं माई॥
हमहुँ कहब अब ठकुर-सोहाती। नाहिं त मौन रहब दिन राती॥
करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। 'बवा सो लुनिअ'[3] लहिअ जो दीन्हा॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाँडि अब होब कि रानी॥
जारइ जोग सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥
ताते कछुक बात अनुसारी[4]। छमिअ देबि बडि चूक हमारी॥
दो०—गूढ़-कपट-प्रिय बचन सुनि, तीय अधर-बुधि रानि।
सुर-माया-बस बैरिनिहि, सुहृद जानि पतियानि[5]॥१७॥
सादर पुनि पुनि पूछति ओही। सबरी-गान[6] मृगी जनु मोही॥
तसि मति फिरी अहइ जसि भावी[7]। रहसी[8] चेरि घात[9] जनु फाबी[10]॥
तुम्ह पूछहु मैं कहत डराऊँ। धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ॥
सजि प्रतीत, बहुबिधि गढि छोली। अवध साढ साती[11] तब बोली॥

---

१ स्वभाव से ही २ बहू बेटा ३ जो बोया गया वही काटा गया अर्थात् करनी का फल पाया। ४ कही ५ विश्वास किया। ६ भीलनी के गाने से ७ होनहार ८ प्रसन्न हुई ९ दाव १० (फबती) लगी। ११ शनिश्चर एक राशि पर २½ वर्ष रहता है जन्म का, बारहवाँ और दूसरा जन्म राशि में बुरा समझा जाता है, तीनों की मिलकर (बहुर्व्रीहि समास) साढ़े सात वर्ष वाली दशा।

'प्रिय सियरामु' कहा तुम रानी । 'रामहिं तुम प्रिय' सो फुरि बानी ।
रहा प्रथम अब ते दिन बीते । समउ फिरे रिपु[१] होहिं पिरीते ।
भानु[२] कमल-कुल पोषनिहारा[३] । बिनु जर जारि करै सोइ छारा[४] ।
जर[५] तुम्हारि चह सवति उखारी । रूँधहु[६] करि उपाउ बर-बारी[७] ।

दो०—तुम्हहि न सोचु, सुहाग[८] बल, निज बस जानहु राउ ।
मन-मलीन मुँहु-मीठ नृप, राउर सरल सुभाउ ॥१८॥

चतुर गँभीर[९] राम महतारी । बीचु[१०] पाइ निज बात सँवारी ।
पठए भरतु भूप ननिऔरें । राम-मातु-मत जानब रौरें[११] ।
सेवहिं सकल सवति मोहि नीके । गरवित भरत-मातु बल पी के ।
सालु तुम्हार कौसलहि माई । कपट-चतुर[१२] नहिं होइ जनाई ।
राजहिं तुम पर प्रेम बिसेखी । सवति[१३] सुभाउ सकइ नहिं देखी ।
रचि प्रपंच[१४] भूपहि अपनाई । राम-तिलक हित लगन धराई ।
यहु कुल उचित राम कहँ टीका । सबहि सुहाइ मोहि सुठि नीका ।
आगिलि बात समुझि डर मोही । देउ दैव फिरि सो फलु ओही ।

दो०—रचिपचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु ।
कहेसि कथा सत-सवति कै, जेहि बिधि बाढ बिरोधु[१५] ॥

भावी बस प्रतीति उर आई । पूँछि रानि निज सपथ दिवाई ।
का पूछहु तुम्ह अबहुँ न जाना । निज हित-अनहित पसु पहिचाना ।
भयेउ पाख[१६] दिनु सजत समाजू । तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू ।
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारे । सत्य कहे नहिं दोषु हमारे ।
जौं असत्य कछु कहब बनाई । तौ बिधि देइहि हमहि सजाई[१७] ।

---

१ बरी २ सूर्य ३ पालन करने वाला ४ राख ५ (जड़) ६ रक्षा ७ उपायरूपी सुन्दर बारि से (चारा ओर कॉटे आदि लगाना) ८ (सौभा[ग्य]) ९ गहरी, मनके भावों को गूढ रखने वाली १० अवसर ११ आप[...] कपटमें चतुर, छलिया, १३ (सपत्नी) १४ षड्यन्त्र, जाल १५ बैर १६ ([...]) १७ सजा ।

रामहि तिलकु कालि जौं भयेउ । तुम्ह कहँ बिपति-बीजु[१] बिधि बयेऊ ॥
रेख खँचाइ कहउँ बलुभाखी[२] । भामिनि भइहु दूध कइ माखी[४] ॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई । तौ घर रहहु न आन उपाई ॥

दो०—*कद्रू बिनतहि दीन्ह दुखु, तुम्हहिं कौसिला देब ।
भरत बंदि-गृह सेइहहिं, लखनु राम के नेब[३] ॥२०॥

कैकयसुता सुनत कटु-बानी । कहि न सकै कछु सहमि सुखानी ॥
तनु पसेउ[५] कदली[६] जिमि काँपी । कुबरी दसन जीभ तब चाँपी[७] ॥
कहि कहि कोटिक कपट-कहानी । धीरज धरहु प्रबोधिसि रानी ॥
कीन्हिस कठिन पढ़ाइ कुपाठू[८] । जिमि न नवै फिर उकठि[९] 'कु-काठू'[१०] ॥
फेरा करमु प्रिय लागि कुचाली । बकिहि[११] सराहइ मानि मराली[१२] ॥
सुनु मथरा बात फुरि तोरी । दहिनि आँखि नित फरकहि मोरी ॥
दिन प्रति देखौं राति कु-सपने । कहौं न तोहि मोह बस अपने ॥
काह करउँ सखि सूध सुभाऊ । दाहिन बाम[१३] न जानउँ काऊ ॥

दो०—अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहुक कीन्ह ।
केहि अघ एकहि बार मोहि, दैव दुसह दुख दीन्ह ॥२१॥

नैहर[१४] जनमु भरब[१५] बरु जाई । जियत न करबि सवति सेवकाई ॥
अरिबस दैउ जिआवत जाही । मरनु नीक तेहि जीव न चाही ॥

* कद्रू और विनता नामक कश्यप मुनि की दो स्त्रियाँ थीं, सर्पों की माता का नाम कद्रू और पक्षियों की माता का नाम विनता था । एक दिन कद्रू ने विनता से सूर्य के घोड़े की पूँछ का रंग पूछा—कैसा है? उसने कहा गोरा है । कद्रू ने कहा काला है । इस झगड़े में निश्चय हुआ कि चलकर देखो और जिसकी बात झूँठी हो वह दासी बनकर रहे । कद्रू को जिताने के लिये घोड़ों की पूँछ में सर्प जा लिपटे । पूँछ काली दिखाई देने लगी । जिससे विनता लज्जित हो उसकी दासी होकर रहने लगी ।

१ दुःख का बीज २ प्रतिज्ञा पूर्वक ३ (शायद) सहायक ४ मक्खी ५ पसीना आना ६ केले का पेट ७ दाबी ८ बुरे पाठ ९ उकठा हुआ, सूखा १० बबूल ११ बगुली १२ हंसनी १३ मित्र, अमित्र १४ पीहर १५ बिताऊँगी ।

'प्रिय सियरामु' कहा तुम रानी । 'रामहिं तुम प्रिय' सो फुरि बानी
रहा प्रथम अब ते दिन बीते । समउ फिरे रिपु[1] मोहिं पिरीत
भानु, कमल कुल पोपनिहारा[2] । बिनु जर जारि करै सोइ छार[3]
जर[4] तुम्हारि चह सवति उखारी । रूँधहु[5] करि उपाउ वर-बारी[6]

दो०—तुम्हहिं न सोच, सुहाग[7] बल, निज बस जानहु राउ ।
मन मलीन मुँहु-मीठ नृप, राउर सरल सुभाउ ॥१८

चतुर गँभीर[8] राम-महतारी । बीचु[9] पाइ निज बात सँभारी
पठए भरतु भूप ननिऔरे । राम-मातु-मत जानब रौरे[11]
सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें । गरवित भरत मातु बल पी
मालु तुम्हार कौसलहि माई । कपट-चतुर[12] नहिं होइ जनाई
राजहिं तुम पर प्रेम बिसेखी । सवति[13] सुभाउ सकइ नहिं देखी
रचि प्रपंच[14] भूपहि अपनाई । राम तिलक हित लगन धराई
यहु कुल उचित राम कहँ टीका । सबहि सुहाइ मोहि सुठि नीका
आगिलि बात समुझि डर मोही । देउ दैव फिरि सो फलु ओही

दो०—रचिपचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु
कहेसि कथा सत सवति कै, जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु[15] ॥

भावी बस प्रतीति उर आई । पूँछि रानि निज सपथ दिवाई
का पूछहु तुम्ह अबहु न जाना । निज हित-अनहित पसु पहिचाना
भयेउ पाख[16] दिनु सजत समाजू । तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारें । सत्य कहें नहिं दोषु हमारें
जौं असत्य कछु कहब बनाई । तौ बिधि देइहि हमहि सजाई[17]

१ बैरी २ सूर्य ३ पालन करने वाला ४ राख ५ (जड़) ६ रक्षा
७ उपायरूपी सुन्दर बारि मे (चारा आर काँटे आदि लगाना) ८ (सौभा
९ गहरी, मनके भावों को गूढ रखने वाली १० अवसर ११ आप
कपटमें चतुर, छलिया, १३ (सपत्नी) १४ पड्यन्त्र, जाल १५ बैर १६ (
१७ सजा ।

रामहि तिलकु कालि जौं भयेउ। तुम्ह कहँ बिपति बीजु[1] विधि बयेउ॥
रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी[2]। भामिनि भइहु दूध कइ माखी॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥

दो०—*कद्रू बिनतहि दीन्ह दुखु, तुम्हहिं कौसिला देव।
भरत बंदि-गृह सेइहहिं, लखनु राम के नेव[3]॥२०॥

कैकय-सुता, सुनत कटु-बानी। कहि न सकै कछु सहमि[4] सुखानी॥
तनु पसेउ[5] कदली[6] जिमि काँपी। कुबरी दसन जीभ तब चाँपी[7]॥
कहि कहि कोटिक कपट-कहानी। धीरजु धरहु प्रबोधिसि रानी॥
कीन्हिसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू[8]। जिमि न नवै फिरि उकठि[9] कुकाठू[10]॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि[11] सराहइ मानि मराली[12]॥
सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी॥
दिन प्रति देखौं राति कुसपने। कहौं न तोहि मोह बस अपने॥
काह करउँ सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम[13] न जानउँ काऊ॥

दो०—अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहुक कीन्ह।
केहि अघ एकहि बार मोहिं, दैव दुसह दुख दीन्ह॥२१॥

नैहर[14] जनमु भरब[15] बरु जाई। जियत न करबि सवति सेवकाई॥
अरि बस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीव न चाही॥

*कद्रू और विनता नामक कश्यप मुनि की दो स्त्रियाँ थीं, सर्पों की माता का नाम कद्रू और पक्षियों की माता का नाम विनता था। एक दिन कद्रू ने विनता से सूर्य के घोड़े की पूँछ का रंग पूछा—कैसा है? उसने कहा गोरा है। कद्रू ने कहा काला है। इस झगड़े में निश्चय हुआ कि चलकर देखो और जिसकी बात झूठी हो वह दासी बनकर रहे। कद्रू को जिताने के लिये घोड़ों की पूँछ में सर्प जा लिपटे। पूँछ काली दिखाई देने लगी। जिससे विनता लज्जित हो उसकी दासी होकर रहने लगी।

१ दुःख का बीज २ प्रतिज्ञा पूर्वक ३ (नायब) सहायक ४ डरी ५ पसीना आया ६ केले का पेड़ ७ दाबी ८ बुरे पाठ ९ उकठा हुआ, सूखा १० बतू ११ बगुली १२ हंसनी १३ मित्र, अमित्र १४ पीहर १५ बिताऊँगी।

दीन-वचन कह बहु-विधि रानी । सुनि कुबरी तिय-माया ठानी ॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना[१] । सुखु सोहागु तुम्ह कहँ दिन दूना ॥
जेहि राउर अति अनभल ताका । सो पाइहि एहु फलु परिपाका[२] ॥
जबते कुमत सुना मैं स्वामिनि । भूख न बासर नींद न जामिनि[३] ॥
पूछेउँ गुनिन्ह[४] रेख तिन्ह खाँची । भरत भुआल होहिं एहु साँची ॥
भामिनि करहु त कहउँ उपाऊ । है तुम्हरी सेवा बस राऊ ॥
दो०—परौंउँ कूप तुअ वचन लगि, सकौं पूत[५] पति त्यागि ।
कहसि मोर दुखु देखि बड़, कस न करब हित लागि ॥२२॥

कुबरी करि कुबली कैकेई । कपट-छुरी उर-पाहन टेई ॥
लखइ न रानि निकट दुख कैसे । चरइ हरित-तृन बलि पसु जैसे[६] ॥
सुनत बात मृदु अन्त कठोरी । देति मनहुँ मधु माहुर घोरी ॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं । स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं ॥
दुइ बरदान[!] भूप मन थाती[७] । माँगहु आजु जुड़ावहु छाती ॥
सुतहिं राजु रामहि बनबासू । देहु, लेहु, सब सवति-हुलासू[‡] ॥

! इन्द्र की सहायता के लिये राजा दशरथ एकबार कैकयी को साथ ले दैत्यों से युद्ध करने गये । युद्ध में रथ की धुरी टूट गई । कैकेयी ने अपने हाथ के सहारे से रथ को ज्यों का त्यों खड़ा रक्खा । जब राजा विजय पाकर रथ से उतरे और यह हाल देखा तब प्रसन्न होकर रानी से कहने लगे कि तेरी मदद से जीत हुई है, तू वर माँग । कैकेयी ने कहा मेरा यह वर आप पर उधार रहा, जब चाहूँगी तब माँग लूँगी ।

एक बार राजा दशरथ के विस्फोटक रोग हुआ । वह कैकेयी के प्रयत्न से अच्छा होगया था । इस पर राजा ने प्रसन्न होकर वरदान देने को कहा । कैकेयी ने उस वरदान को भी थाती रूप रख दिया । इस प्रकार दो बरदान हुए ।

१ हिरास होकर २ परिपाक, भोग ३ (यामिनि) रात्रि ४ ज्योतिषियों को ५ पुत्र । *रूपक कर्मधारय समास, रूपकालंकार ६ बलि होने वाले पशु को हरी हरी घास आदि पदार्थ दिये जाते हैं, वह खुश होकर खाता है मगर आगे के दुःखों का उसे जरा भी ज्ञान नहीं ७ धरोहर ‡परिवृत्त अलंकार-जहाँ एक वस्तु को देकर दूसरी ली जाय ।

पति राम-सपथ जब करई। तब माँगेहु जेहि बचनु न टरई॥
इ अकाजु आजु निसि बीते। बचनु मोर प्रिय मानहु जीते॥

दो०—बड कुघातु करि पातिकिनि, कहेसि कोप-गृह जाहु।
काज सवाँरेहु सजग[1] सबु, सहसा[2] जनि पतिआहु॥२३॥

करिहि रानि प्रान प्रिय जानी। बार बार बडि बुद्धि बखानी॥
तोहि सम हितु न मोर संसारा। बहे जात कइ भइसि अधारा[3]॥
जी बिधि पुरब मनोरथु काली। करौं तोहि चखु पूतरि[4] आली॥
हु बिधि चेरिहि आदरु देई। कोप भवन गवनी कैकेई॥
निपति बीजु बरषारितु चेरी। भुँइ भइ कुमति[5] कैकेई केरी॥
इ कपट-जलु अंकुर जामा। बर दोउ दल[8] दुख फल परिनामा॥
कोप समाजु साजि सबु सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई[9]॥
राउर नगर कोलाहलु होई। यह कुचाल कछु जान न कोई॥

दो०—प्रमुदित पुर नर-नारि सब, सजहिं सु मंगलचार।
एक प्रविसहिं एक निरगमहिं[10] भीर भूप-दरबार॥२४॥

बाल-सखा सुनि हिय हरषाहीं। मिलि दस पाँच राम पहिं जाहीं॥
प्रभु आदरहिं प्रेम पहिचानी। पूँछहिं कुसल खेम मृदु-बानी॥
फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परसपर राम बडाई॥
को रघुबीर-सरिस[11] संसारा। सीलु-सनेहु निबाहनि-हारा॥
जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात एहु ओर निबाहू॥
अस अभिलाषु नगर सब काहू। केकय-सुता हृदय अतिदाहू॥
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहै न नीच मतें चतुराई॥

---

१ चैतन्य २ शीघ्र ३ सहारा ४ आँख की पुतली छिमम अभेद रूपक अलंकार ५ 'मति ही कुत्सित' कर्मधारय, बहुब्रीहि में 'कुत्सित है मति जिसकी' ऐसा विग्रह होगा ६ जमा, निकला ७ बरदान ८ पत्ते ९ नष्ट की १० जाते हैं ११ सदृश।

दो०—साँझ समय सानंद नृप, गयउ कैकेई गेह ।
गवन निठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेह* ॥२

कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ । भयवस अगहुड़[१] परइ न पा
सुर-पति बसइ बाँह-बल जाके । नर-पति सकल रहहिं रुख ता
सो सुनि तिय-रिस गयेउ सुखाई । देखहु काम प्रताप बड़ाई ।
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे[२] । ते रति-नाथ[३] सुमन-सर[४] मारे ।
सभय नरेसु प्रिया पहिं गयेउ । देखि दसा दुख दारुन भयेउ ।
भूमि-सयन पटु मोट पुराना । दिए डारि तन भूषन नाना ।
कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी । अन-अहिवातु सूच जनु भावी[५] ।
जाइ निकट नृपु कह मृदु-बानी । प्रान प्रिया केहि हेतु रिसानी ।

छं०—केहि हेतु रानि रिसानि, परसत पानि पतिहि निवारई[६] ।
मानहु सरोष-भुअग-भामिनि[७] बिषम भाँति निहारई ।
दोउ बासना[८] रसना[९] दसन बर[१०] मरम ठाहरु[११] देखई,
तुलसी नृपति भवितव्यतावस काम-कौतुक लेखई ॥

सो०—बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिक-बचनि ।
कारन मोहि सुनाउ, गज-गामिनि निज कोप कर ॥२६॥

अनहित[१२] तोर प्रिया केइ कीन्हा । केहि दुइ-सिर केहि जम चह लीन्हा
कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू । कहु केहि नृपहि निकारउँ देसू
सकउँ तोर अरि अमरउ मारी । काह कीट बपुरे नर-नारी
जानसि मोर सुभाउ बरोरू[१३] । मन तव आनन चंद चकोरू

*मानो स्नेह शरीर धारण कर कठोरता के पास गया (उत्प्रेक्षालंकार) १ आगे २ सहनेवाले ३ कामदेव ४ फूलों के बाण ५ट हुए [मानो भावी रंडापे की सूचना ६ हाथ छूने से रोकती ७ साँपिनि ८ इच्छा ९ जीभ १० वरदान ११ मर्मस्थान १२ अ १३ सुन्दर जंघा वाली [कवि ने यहाँ कैकेयी को भुजंगिन, क्रोध पूर्ण द को सर्पिणी की भयानक दृष्टि, वासनाओं को जीभ, वरदानों को द माना है अतः उत्प्रेक्षा से रूपकालंकार है ।

प्रिया, प्रान सुत सरबसु मोरे । परिजन[1] प्रजा सकल बस तोरें ॥
जौं कछु कहहुँ कपटि करि तोहीं । भामिनि राम-सपथ सत मोहीं ॥
बिहँसि माँगु मन भावति बाता । भूषन सजहि मनोहर गाता ॥
घरी कुघरी[2] समुझि जिय देखू । बेगि प्रिया परिहरहि कुबेषू ॥

दो०—यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि, बिहँसि उठी मति मंद[3] ।
भूषन सजति बिलोकि मृगु, मनहुँ किरातिनि फंद ॥२७॥

पुनि कह राउ सुहृद जिअ जानी । प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी ॥
भामिनि भयेउ तोर मनभावा । घरघर नगर अनंद बधावा ॥
रामहिं देउँ कालि जुवराजू । सजहि सु लोचनि मंगल साजू ॥
ढलकि[4] उठेउ सुनि हृदय कठोरू । जनु छुइ गयेउ पाक बरतोरू[5] ॥
ऐसिउ पीर बिहँसि तेइ गोई[6] । चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई ॥
लखौ न भूप कपट चतुराई । कोटि कुटिल मनि[7] गुरु पढ़ाई ॥
जद्यपि नीति निपुन[8] नरनाहू । नारि चरित जलनिधि अवगाहू[9] ॥
कपट सनेह बढ़ाइ बहोरी । बोली बिहँसि नयन मुहुँ मोरी ॥

दो०—माँगु माँगु पै कहहु पिय, कबहुँ न देहु न लेहु ॥
देन कहेहु बरदान दुइ, तेउ पावत संदेहु ॥२८॥

जानेउँ मरमु राउ हँसि कहई । तुम्हहिं कोहाब[10] परमप्रिय अहई ॥
थाती राखि न माँगेहु काऊ । बिसरि गयेउ[11] मोहि भोर सुभाऊ ॥
झूठेहु हमहि दोषु जनि देहू । दुइ कै चारि माँगि मकु लेहू ॥
रघुकुल-रीति सदा चलि आई । प्रान जाहु बरु, बचनु न जाई ॥
नहिं असत्य सम पातक पुंजा[12] । गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥
सत्य मूल सब सुकृत सोहाए । बेद पुरान बिदित मुनि गाए ॥

---

१ कुटुम्ब २ समय, कुसमय ३ खोटी बुद्धिवाली ४ चौंकपड़ी ५ बालतोड़ ६ छिपाती ७ करोड़ों खोटे लोगों के सरदारों के गुरु । ८ नीति में निपुण (सप्तमी तत्पु०) ९ अथाह समुद्र १० रूठना ११ याद नहीं रहा १२ पाप का समूह ।

तेहि पर राम-सपथ करि आई । सुकृत-सनेह अवधि[1] रघुराई ॥
बात दृढाइ कुमति[2] हँसि बोली । कुमत कुविहग कुलह[3] जनु खोली ॥

दो०—भूप मनोरथ सुभग बनु, सुख सु-विहग समाजु[4] ।
भिल्लिन जनु छाँड़न-चहति वचन भयंकर बाजु ॥२९॥

सुनहु प्रानपति भावत जीका । देहु एक बर भरतहि टीका ॥
मागउँ दूसर बर कर जोरी । पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ॥
तापस बेष बिसेषि उदासी । चौदह बरिस रामु बनवासी ॥
सुनि मृदु-बचन भूप हिय सोकू । ससि-कर[5] छुअत बिकल जिमि कोकू[6] ॥
गयेउ सहमि नहिं कछु कहि आवा । जनु सचान[7] बन झपटेउ लावा[8] ॥
बिबरन[9] भयेउ निपट नरपालू । दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू ॥
माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन । तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥
मोर मनोरथ सुरतरु फूला[10] । फरत करिनि[11] जिमि हतेउ समूला ॥
अवध उजारि कीन्हि कैकेई । दीन्हिसि अचल बिपति कै नेई[12] ॥

दो०—कवने अवसर का भयेउ, गयेउँ नारि बिस्वास ।
जोग सिद्धि फल समय जिमि, जतिहि[13] अबिद्यानास ॥३०॥

गहि धीरजु राउ मन हिं मन झाँखा[14] । देखि कुभाँति कुमति मनु माखा[15] ॥
भरतु कि राउर पूत न होहीं । आनेहु मोल बेसाहि[16] कि मोही ॥
जो सुनि सरु अस लागु तुम्हारे । काहे न बोलेहु बचनु सँभारे ॥
देहु उतरु असु करहु कि नाहीं । सत्य संध[17] तुम्ह रघुकुल माहीं ‡ ॥
देन कहेहु अब जनि बरु देहू । तजहु सत्य जग अपजसु लेहू ॥
सत्य सराहि कहेहु बरु देना । जानेहु लेइहि माँगि चबेना ॥

---

१ सीमा २ (बहुव्रीहि में) कैकेयी ३ टोपी ४ सुखरूपी सुन्दर पक्षियों का समूह ५ चन्द्रकिरण ६ चकवा-चकवी ७ बाज ८ बटेर ९ मलीन १० कल्पवृक्ष के फूल ११ हथिनी १२ नींव १३ योगी १४ झींखे १५ क्रोध १६ मर्यादा १७ सत्य प्रतिज्ञ * रूपकालंकार ‡ (व्यंग का भाव) ।

*सिवि †दधीचि ‡बलि जो कछु भाषा। तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा॥
अति कटु बचन कहति कैकेई। मानहुँ लोन जरे पर देई[1]॥
दो०—धरम-धुरधर[2] धीर धरि नयन उघारे राय।
सिर धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहि कुठाय[3] ॥३१॥

१ जरे पर लौन लगाना दुःख में दुःख बढाना (लोकोक्ति) २ धरम धुर (धरम की धुर) प० तत्पु० धरम-धुरधर, धरम की धुरी धारण की है जिसने (बहुव्रीहि) ३ कुठौर।

* १—राजा उशीनर का जेठा पुत्र शिवि बड़ा दानी था उसकी राजधानी कन्धार के पास थी। एक दिन ब्रह्मा उसके दान की परीक्षा करने को ब्राह्मण बनकर आये। राजा से उसका पुत्र का माँस उसी के हाथ से पका हुआ माँगा। राजा ने ऐसा ही किया। अन्त में राजा ही से खाने को कहा। राजा इस पर भी तुल गया। तब ब्रह्मा अपने असली रूप में होगये और राजा की दान शीलता से बड़े प्रसन्न हुए।

२—राजा शिवि को ९९ यज्ञों में सफल हुआ देखकर इन्द्र व्याकुल हुआ। उसकी यज्ञ विध्वंस करने को स्वयं बाज बनकर अग्नि को कबूतर बनाया और उसके पीछे दौड़ा। कबूतर ने यज्ञ की वेदी पर बैठ हुए राजा की शरण ली। राजा शरणागत को बचाने के लिये अपने शरीर का माँस काट कर कबूतर के बराबर तोलने लगा। जब पूरा नहीं हुआ तो अपना गर्दन काटने को तैयार हुआ। तब भगवान् ने प्रगट होकर उस अपने धाम भेज दिया।

†दधीच ऋषि ने वृत्रासुर को मारने के लिये अपनी जाँघ की हड्डी इन्द्र को दे दी, जिससे उन्हें प्राण त्याग करना पड़ा।

‡जब राजा बलि त्रिलोकी का स्वामी हुआ तब इन्द्र घबरा कर विष्णु के पास गये, उन्होंने धीरज दे राज्य दिलाने का वायदा किया और वामन रूप धर बलि से जाकर ३½ पैंड धरती माँगी। राजा ने इनको दान दिया, तब ३ चरण में ब्रह्मलोक तक नाप कर आधे चरण पृथ्वी माँगी, राजा ने कहा "मेरी पीठ नाप लीजिये।" भगवान् उससे प्रसन्न हुए और इन्द्र की कामना पूरी की।

आगे दीख जरति रिस भारी। मनहु रोष तरवारि उघारी॥
मूठि[1] कुबुद्धि धार निठुराई[2]। धरी कूबरी सान बनाई[3]॥
लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा॥
बोले राउ कठिन कर छाती। बानी सबिनय तासु सोहाती[5]॥
प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती। भीरु प्रतीति[6] प्रीति करि हाँती[7]॥
मोरें भरतु रामु दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि संकर साखी[8]॥
अवसि दूत मैं पठउब प्राता। ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता॥
सुदिन सोधि सबु साजु सजाई। देउँ भरत कहँ राजु बजाई[9]॥

दो०—लोभु न रामहि राजु कर, बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जिय, करत रहेउँ नृपनीति[10]॥३२॥

राम-सपथ सत कहउँ सुभाऊ। राममातु कछु कहेउ न काहू॥
मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूँछे। तेहि ते परेउ मनोरथ छूछे[11]॥
रिस परिहरु अब मंगल साजू। कछु दिन गये भरत जुबराजू॥
एकहि बात मोहि दुखु लागा। बर दूसर असमंजस[12] माँगा॥
अजहूँ हृदय जरत तेहि आँचा। रिस परिहास कि साँचेहु साँचा॥
कहु तजि रोष राम अपराधू। सबु कोउ कहै रामु सुठि[13] साधू॥
तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। अब सुनि मोहि भयेउ संदेहू॥
जासु सुभाउ अरिहि-अनुकूला। सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला॥

दो०—प्रिया हास[14] रिस परिहरहि, माँगु बिचारि बिबेकु।
जेहि देखौं अब नयन भरि, भरत-राज-अभिषेकु॥३३॥

जिअइ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिकु जिअइ दुख दीना॥

---

१ (मुष्टिक) मूठ २ कठोरता ३ पैनी की ४ भयंकर ५ अच्छी लगनेवाली ६ विश्वास, ७ नष्ट करके ८ साक्षी, गवाही ९ धूम धाम के साथ १० राजनीति ११ खाली १२ चिन्ता से भरा हुआ १३ अ

कहउँ सुभाउ न छलु मन माहीं । जीवन मोर राम बिनु नाहीं ॥
समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना । जीवन राम दरस आधीना ॥
सुनि मृदु बचन कुमति असि जरई । मनहुँ अनल[1] आहुति[2] घृत परई ॥
कहै करहु किन कोटि उपाया । इहाँ न लागिहि राउरि-माया[3] ॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं । मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं ॥
रामु साधु तुम्ह साधु सयाने । राममातु भलि[4] सब पहिचाने ॥
जस कौसिला मोर भल ताका[4] । तस फलु उन्हहि देउँ करि साका[5] ॥

दो०—होत प्रातु मुनिबेष धरि, जौं न रामु बन जाहिं ।
मोर मरनु राउर अजसु, नृप समुझिअ मन माहिं ॥३४॥

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी । मानहु रोष तरंगिनि[6] बाढ़ी ॥
पाप-पहार प्रगट भै सोई । भरी क्रोध जल जाइ न जोई[7] ॥
दोउ बर कूल[8] कठिन हठ धारा । भँवर कूबरी बचन प्रचारा ॥
ढाहति[9] भूपरूप तरुमूला । चली बिपति बारिधि अनुकूला ॥
लखी नरेस बात सब साँची । तियमिसु मीचु[10] सीस पर नाची ॥
गहि पद बिनय कीन्हि बैठारी । जनि दिनकर-कुल होसि कुठारी[11] ॥
माँगु माथ अबहीं देउँ तोही । रामबिरह जनि मारसि मोही ॥
राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँती । नाहित जरिहि[12] जनमभरि छाती ॥

दोहा—देखी ब्याधि[13] असाधि नृपु, परेउ धरनि धुनि माथ ।
कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ ॥३५॥

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता । करिनि[14] कलप तरु मनहुँ निपाता[15]

---

१ अग्नि २ होम की वस्तु जो मंत्र के साथ अग्नि में छोड़ी जाती है ३ माया* वक्रोक्ति अलंकार —(जहाँ निंदा में स्तुति और स्तुति में निंदा हो) ४ देगा है ५ वीरता का काम । ६ क्रोध की नदी ७ देखने से भय होता है ८ किनारा ९ गिराती है १० मृत्यु ११ कुल्हाड़ी १२ दुःख देती रहेगी १३ रोग (असाध्य) १४ हथिनी १५ नष्ट किया ।

। यहाँ कैकेयी का रोष नदी (की तीव्र धारा) है जो पाप रूप पर्वत

कठु सूख मुख आव न बानी । जनु पाठीनु[१] दीनु बिनु पानी ॥
पुनि कह कटु कठोर कैकेई । मनहु घाय महुँ माहुर[२] देई ॥
जौं अन्तहु अस करतबु रहेऊ । माँगुमाँगु तुम्ह केहिबल कहेऊ ॥
दुइ कि होइ एक समय भुआला । हँसब ठठाइ फुलाइब गाला ॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई । होइ कि छेम-कुसल रौताई[३] ॥
छाँडहु बचन कि धीरज धरहू । जनि अबला जिमि करुना करहू ॥
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी । सत्य-सघ[४] कहँ तृनसम बरनी ॥
दोहा—मरमबचन[५] सुनि राउ कह कहु कछु दोष न तोर ।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि कालु कहावत मोर ॥ ३६ ॥
चहत न भरत भूपपद भोरें । बिधिबस कुमति[६] बसी जियतोरें ॥
सो सबु मोर पाप परिनामू । भयेउ कुठाहर[७] जेहि बिधि बामू ॥
सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई । सब गुनधाम राम प्रभुताई ॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई । होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई ॥
तोर कलंकु मोर पछिताऊ । मुयेहु न मिटिहि न जाइहि काऊ ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई । लोचन-ओट बैठु मुँहु गोई ॥
जब लगि जिअउँ कहउँ कर जोरी । तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी ॥
फिर पछितैहसि अंत अभागी । मारसि गाइ नाहरु[८] लागी ॥
दोहा—परेउ राउ कहि कोटि बिधि, काहे करसि निदानु[९] ।
कपटसयानि न कहति कछु, जागत मनहुँ मसानु[१०] ॥ ३७ ॥
राम राम रट बिकल भुआलू । जनु बिनु पंख बिहग[११] बेहालू[१२]

से निकली है, क्रोधरूप जल से भरी हुई है, वर दोनों किनारे हैं, हठ धारा है, कुबड़ी की शिक्षा भँवर है, राजा का जो रूप है वही किनारे का वृक्ष है जो धार से बाढ़ आने पर गिरता है और जो विपत्ति रूप समुद्र की ओर बह रही है । रूपकालङ्कार ।

१ मछली २ विष ३ शूरता ४ सत्य प्रतिज्ञा वाले ५ हृदय को वेधने वाले । ६ बुरी मति (कर्मधारय) ७ कु समय ८ नाहरु या तांत ९ अन्त, सर्वनाश १० तांत्रिक प्रयोग है—मसान जगाते समय मौन धारण किया जाता है ११ पक्षी १२ व्याकुल ।

हृदय मनाव भोरु जनि होई। रामहिं जाइ कहै जनि कोई॥
उदय करहु जनि रबि रघुकुलगुरु। अवध बिलोकि सूल होइहि उर॥
भूपप्रीति कैकेइ कठिनाई। उभय अवधि[1] बिधि रची बनाई॥
बिलपत नृपहि भयेउ भिनुसारा[2]। बीना-बेनु संख धुनि द्वारा॥
पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक[3]। सुनत नृपहि जनु लागहिं सायक[4]॥
मंगल सकल सुहाहिं न कैसें। सहगामिनिहि[5] बिभूषन जैसें॥
तेहि निसि नींद परी नहि काहू। राम दरस-लालसा उछाहू॥
दो०—द्वार भीर सेवक सचिव, कहहिं उदित रबि देख।
जागे अजहुँ न अवधपति, कारनु कवनु बिसेखि॥ ३८॥
पछिले पहर भूपु नित जागा। आजु हमहि बड़ अचरजु लागा।
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई। कीजिअ काज रजायसु[6] पाई॥
गए सुमंत्रु तब राउर पाहीं। देखि भयावन जात डेराहीं॥
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहुँ बिपति बिषाद बसेरा[7]॥
पूँछे कोउ न ऊतरु देई। गए जेहि भवन भूप कैकेई॥
कहि जयजीव बैठ सिर नाई। देखि भूपगति गयेउ सुखाई॥
सोच बिकल बिबरन[8] महि परेऊ। मानहुँ कमल मूल परिहरेऊ[9]॥
सचिव सभीत सकै नहिं पूँछी। बोली असुभ भरी सुभ-छूँछी[10]॥
दो०—परी न राजहि नींद निसि, हेतु जान जगदीसु।
रामु रामु रटि भोरु किय, कहै न मरमु[11] महीसु॥ ३९॥
आनहु रामहि बेगि बोलाई। समाचार तब पूँछेहु आई॥
चलेउ सुमंत्रु रायरुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी॥
सोच बिकल मग परै न पाऊ। रामहिं बोलि कहहिं का राऊ॥
उर धरि धीरजु गयेउ दुआरें। पूँछहिं सकल देखि मनु-मारे॥

---

१ सीमा २ सवेरा ३ गाने वाले ४ तीर ५ सती को (सती स्त्री को पति के साथ जलने से पहले वस्त्र-भूषण पहिनने पड़ते थे) ६ आज्ञा ७ निवास ८ शरीर काला पड़ा हुआ है। ९ जड़ उखड़ गई हो। १० आनंद रहित ११ भेद।

समाधान करि[1] सो सबही का । गयेउ जहाँ दिन-कर-कुल-टीका[2]॥
राम सुमंत्रहि आवत देखा । आदरु कीन्ह पितासम लेखा[3]॥
निरखि बदनु कहि भूप रजाई । रघुकुल दीपहिं[4] चलेउ लेवाई॥
राम कुभाँति[5] सचिव सँग जाहीं । देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं॥

दो०—जाइ देखि रघु-बंस-मनि, नरपति निपट कुसाजु ।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहु वृद्ध गजराजु ।४०

सूखहिं अधर जरै सब अंगू । मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू॥
सरुष[6] समीप देखि कैकेई । मानहुँ मीचु घरी गनि लेई॥
करुनामय मृदु राम सुभाऊ । प्रथम दीख दुख सुना न काहू॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी । पूँछी मधुरबचन महतारी॥
मोहि कहु मातु तात-दुख-कारन । करिअ जतन जेहि होइ निवारन[7]॥
सुनहु राम सब कारन एहू । राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू॥
देन कहेउ मोहि दुइ बरदाना । माँगेउँ जो कछु मोहिं सुहाना॥
सो सुनि भयेउ भूप उर सोचू । छाँडि न सकहिं तुम्हार सँकोचू॥

दो०—सुत-सनेह इत बचनु उत, सकट परेउ नरेसु ।
सकहु तो आयसु धरहु सिर, मेटहु कठिन कलेसु ॥४१॥

निधरक[8] बैठि कहै कटु बानी । सुनत कठिनता अति अकुलानी॥
जीभ कमान, बचन सर नाना । मनहुँ महिप मृदु-लच्छ[9] समाना॥
जनु कठोरपनु धरें सरीरू । सिखै धनुपविद्या बर-बीरू[10]॥
सबु प्रसगु रघुपतिहि सुनाई । बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई॥
मन मुसकाइ भानु-कुल भानू[11] । रामु सहज-आनंद निधानू॥

१ समझाकर २ सूर्यवंशियों में श्रेष्ठ (सत तत्पु०) ३ पिता के समान समझकर ४ रघुकुल के दीपक ५ बुरी तरह ६ क्रोधित ७ रोक ८ निःशंक ९ कोमल निशाना १० श्रेष्ठवली ११ भानुकुल के भानु, अर्थात भानुकुल में भानु ।

❀ रूपकालंकार गर्भित उत्प्रेक्षा ।

बोले वचन विगत सब दूषन[1]। मृदु मंजुल जनु बाग-विभूषन[2]॥
सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितु-मातु-वचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु-तोषनि हारा[3]। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥

दोहा—मुनिगन मिलनु विसेषि वन, सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, समत[4] जननी तोर॥४२॥

भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू। विधि सब विधि मोहि सन्मुख आजू॥
जौं न जाउँ वन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़समाजा॥
सेवहिं अरँडु[7] कल्पतरु त्यागी। परिहरि अमृतु लेहिं विषु माँगी॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखु विचारि मातु मन माहीं॥
अंब एकु दुखु मोहि विसेषी। निपट विकल नरनायकु देखी॥
थोरिहि बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहिं महतारी॥
राउ धीर गुन उदधि अगाधू। भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू॥
जाते मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कह सतिभाऊ॥

दोहा—सहज सरल रघुवर वचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जल वक्रगति, जद्यपि सलिल समान॥४३॥

रहसी[8] रानि रामरुखपाई। बोली कपटसनेह जनाई॥
सपथ तुम्हार, भरत कै आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना॥
तुम्ह अपराधु जोग नहिं ताता। जननी-जनक-बंधु-सुख-दाता॥
राम सत्य सबु जो कछु कहहू। तुम्ह पितु मातु-वचन-रत अहहू॥
पितहिं बुझाइ कहहु, वलि सोई। चौथेपन जेहिं अजसु न होई॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत[9] जेहि दीन्हे। उचित न तासु निरादरु कीन्हे॥

---

१ 'सब दूषण-विगत, मृदु मंजुल' यह सब वचन विशेष्य के विशेषण हैं। २ सरस्वती के भूषणरूप ३ प्रसन्न करने वाला ४ समर्थन की हुई ५ सीधा ६ मूर्खों का समूह ७ अण्डी का पेड़ ८ प्रसन्न हुई। ९ पुण्य (कर्त्ता कारक म) जिहि सुकृत से उसका निरादर आदि२।

लागहि कुमुख वचन सुभ कैसे । मगह[1] गयादिक तीरथ जैसे ॥
रामहि मातुबचन सब भाए । जिमि सुरसरिगत सलिल सुहाए ॥

दोहा—गइ मुरछा, रामहि सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह ।
सचिव राम आगमन कहि, विनय समयसम कीन्ह ॥४४॥

अवनिप[2] अकनि[3] रामु पगु धारे । धरि धीरजु तब नयन उघारे ॥
सचिव सँभारि राउ बैठारे । चरनु परत नृप रामु निहारे ॥
लिये सनेहविकल उर लाई । गै मनि मनहुँ फनिक[4] फिरि पाई ॥
रामहिं चितै रहेउ नरनाहू । चला विलोचन वारि प्रवाहू ॥
सोकविवस कछु कहै न पारा[5] । हृदय लगावत बारहि बारा ॥
विधिहि मनाव राउ मन माहीं । जेहि रघुनाथ न कानन जाहीं ॥
सुमिर महेसहि कहै निहोरी । विनती सुनहु सदासिव मोरी ॥
आसुतोप[6] तुम्ह अवढर[7] दानी । आरति हरहु दीन जनु जानी ॥

दोहा—तुम प्रेरक[8] सबके हृदय, सो मति रामहि देहु ।
वचन मोर तजि रहहिं घर, परिहरि सील सनेहु ॥४५॥

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊँ । नरक परउँ बरु सुरपुर जाऊँ ।
सब दुख दुसह सहावउ मोही । लोचन ओट रामु जनि होहीं ।
अस मन गुनै राउ नहि बोला । पीपर-पात-सरिस मनु डोला ।
रघुपति पितहि प्रेम-वस जानी । पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी ।
देस काल अवसर अनुसारी । बोले वचन विनीत विचारी ।
तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई । अनुचित छमब जानि लरिकाई ।
अति-लघु बात लागि दुख पावा । काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा ।
देखि गोसाँइहि पूछेउँ माता । सुनि प्रसगु[9] भए सीतल गाता ।

---

१ मगध यह बिहार प्रान्त में एक देश है, इसमें मरने से पुण्य क्षीण होकर नरकवासी होता है। २ (अवनि+प,) राजा ३ सुना ४ साँप की खोई हुई मणि ५ सकना क्रिया के अर्थ में ६ शीघ्र सन्तुष्ट होने वाले, ७ अटूट ८ प्रेरणा करने वाले ९ हाल ।

दो०—मंगलमय सनेहबस, सोच परिहरिअ[1] तात।
आयसु देइअ हरषि हिय, कहि पुलके प्रभुगात ॥४६॥

धन्य जनमु जगतीतल[2] तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू ॥
चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितुमातु प्रानसम जाकें ॥
आयसु पालि जनमफलु पाई। ऐहौं वेगिहि होउ रजाई[3] ॥
बिदा मातुसन आवउँ माँगी। चलिहौं बनहिं बहुरि पग लागी ॥
अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा। भूप सोकबस उतरु न दीन्हा ॥
नगर व्यापि गइ बात सुतीछी[4]। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी ॥
सुनि भए बिकल सकल नर नारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी[5] ॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिर सोई। बड़ बिषाद[6] नहिं धीरज होई ॥

दो०—मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं[7], सोकु न हृदय समाइ।
मनहुँ § करुन रस-कटकई,—उतरी अवध बजाइ ॥४७॥

मिलेहि माँझ बिधि बात बिगारी। जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी ॥
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ ॥
निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा बिषु चाहति चीखा ॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुबंस-बेनु-बन आगी ॥
पालव बैठि पेड़ एहि काटा। सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा ॥
सदा रामु एहि प्रानसमाना। कारन कवन कुटिलपनु ठाना ॥
सत्य कहहिं कबि नारिसुभाऊ। सब बिधि अगम अगाध दुराऊ ॥
निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई। जानि न जाइ नारिगति भाई ॥

दो०—काह न पावकु जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाइ ॥४८॥

---

१ छोड़ दीजिये २ पृथ्वी पर ३ आज्ञा ४ (तीक्ष्ण) ५ आग ६ दुःख ७ चुवाते हैं। § मानो करुणा रस का कटक अयोध्या में गाते बाजे के साथ उतरा (उत्प्रेक्षालंकार)। [illegible]

का सुनाइ बिधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह देखावा॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा। बरु बिचारि नहिं कुमतिहि[1] दीन्हा॥
जो हठि भयेउ सकल दुख-भाजनु। अबला बिबस ग्यानु गुनु गा जनु।
एक धरम-परमिति[2] पहिचानें। नृपहि दोसु नहिं देहिं सयानें।
सिवि-दधीचि-हरिचंद* कहानी। एक एक सन कहहिं बखानी।
एक भरत कर संमत[3] कहहीं। एक उदास-भाय सुनि रहहीं।
कान मूँदि कर रद[4] गहि जीहा। एक कहहि यह बात अलीहा[5]॥
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे। राम भरत कहँ प्रान[5] पियारे॥

दो०—चंद चुवइ बरु अनलकन[6], सुधा होइ बिष तूल[7]।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं कछु, भरतु रामप्रतिकूल॥ ४९॥

---

१ (बहुव्रीहि में अर्थ) २ धरम की मर्यादा ३ सलाह से ४ दाँत ५ असत्य ६ अग्नि कण ७ तुल्य।

* रघु के वंश में राजा हरिश्चन्द्र बड़ा धर्मात्मा हुआ। एक बार वशिष्ठ जी ने विश्वामित्र से इसके दान और सत्य को सराहा। उन्होंने परीक्षा करने को पूरा राज्य माँगा। जब उसने दान दिया। तब दक्षिणा माँगी। परन्तु उसके पास कहाँ थी जो देता। यह कहा कि मैं नौकरी करके दूँगा। उन्होंने कहा 'हम यहाँ उद्यम भी न करने देंगे। तब राजा काशी में बिकने गये। जब विश्वामित्र दक्षिणा लेने पहुँचे तब राजा ने पुत्र और स्त्री को बेचकर कुछ धन दिया और फिर शेष के लिये आपने चाण्डाल की नौकरी की। श्मशान पर कर उगाहना स्वीकार कर ऋषि की दक्षिणा चुकाई। कुछ काल में जब इसका पुत्र मर गया और उसकी स्त्री लड़के को श्मशान पर ले गई तो राजा ने इससे भी कर माँगा। विनय करने पर भी न माना। जब स्त्री ने दुखी होकर आधा वस्त्र फाड़ने को हाथ किया उसी समय भगवान् ने आकर हाथ रोका और प्रसन्न हुए। पुत्र को जिला कर फिर अयोध्या के राज-सिंहासन पर बैठाया और अन्त में सबको मुक्ति दी।

एक निधानहि दूषनु देहीं । सुधा देखाइ दीन्ह विषु जेही ॥
सरभरु[1] नगर सोचु सब काहू । दुसह दाहु उर मिटा उछाहू ॥
बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी[2] । जे प्रिय परम कैकई केरी ॥
लगीं देन सिख सीलु[3] सराही । वचन बानसम लागहि ताही ॥
भरतु न मोहि प्रिय रामसमाना । सदा कहहु यहु सबु जगु जाना ॥
करहु राम पर सहजसनेहू । केहि अपराध आजु बनु देहू ॥
कबहुँ न कियेहु सवति आरेसू[4] । प्रीति प्रतीति जान सबु देसू ॥
कौसल्या अब काह बिगारा । तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा ॥

दो०—सीय कि पिय सँगु परिहरिहिं लषनु कि रहिहहिं धाम ।
राजु कि भूँजब भरत पुर नृपु कि जिइहिं बिनु राम ॥४०॥

अस बिचारि उर छाड़हु कोहू । सोक कलंक कोठि जनि होहू ॥
भरतहिं अवसि देहु जुवराजू । कानन काह राम कर काजू ॥
नाहिंन रामु राज के भूखे । धरमधुरीन बिषयरस रूखे ॥
गुरुगृह बसहु रामु तजि गेहू । नृप सन अस बर दूसर लेहू ॥
जौं नहिं लगिहहु कहें हमारे । नहिं लागहि कछु हाथ तुम्हारे ॥
जों परिहास[5] कीन्ह कछु होई । तौ कहि प्रगट जनावहु सोई ॥
रामसरिस सुत कानन जोगू । काह कहहि सुनि तुम्ह कहँ लोगू ॥
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई । जेहि बिधि सोकु कलंकु नसाई ॥

छंद—जेहि भाँति सोकु कलंकु जाइ उपाय करि कुल पालही ॥
हठि फेरु रामहिं जात बन जनि बात दूसरि चालही ॥
जिमि भानु बिनु दिन, प्रान बिनु तनु, चंदु बिनु जिमि जामिनी[7] ॥
तिमि अवध तुलसीदासप्रभु बिनु समुझि धौं जिय भामिनी ॥

---

१ खलबली २ बड़ी बूढ़ी ३ स्वभाव ४ परेखा ५ दिल्लगी ६ हँसी ७ रात्रि ।

राखि न सकै न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू[१] ॥
लिखत सुधाकर[२] गा लिखि राहू। विधिगति वाम[३] सदा सब काहू ॥
धरम सनेह उभय मति घेरी। भै गति साँप छुछुंदरि केरी[४] ॥
राखौं सुतहि करउँ अनुरोधू। धरम जाइ अरु बंधुविरोधू[५] ॥
कहौं जान वन तौ वडि हानी। संकट-सोच-विवस भै रानी ॥
बहुरि समुझि तियधरमु[७] सयानी। रामुभरतु दोउ सुत सम जानी ॥
सरल सुभाउ राममहतारी। बोली वचन धीर धरि भारी ॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितुआयसु सब धरम क टीका[८] ॥

दो०—राजु देन कहि दीन्ह बनु, मोहि न सो दुख लेसु ।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि, प्रजहि प्रचंड कलेसु ।५६॥

जौं केवल पितु-आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि वडि माता[†] ॥
जौं पितुमातु कहेउ वन जाना[‡]। तौ कानन सत-अवध समाना ॥
पितु वनदेव मातु वनदेवी। खग मृग चरनसरोरुह-सेवी ॥
अंतहु उचित नृपहि वनवासू[१०]। वय[९] विलोकि हिय होइ हरासू ॥
वडभागी वनु, अवध अभागी। जो रघु-वंस-तिलक तुम्ह त्यागी ॥
जौं सुत कहउँ संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदय होइ संदेहू ॥
पूत परमप्रिय तुम्ह सबही के। प्रान प्रान के जीवन जी के ॥
ते तुम्ह कहहु मातु वन जाऊँ। मैं सुनि वचन बैठि पछिताऊँ ॥

दो०—यह विचारि नहिं करउँ हठ, झूठ सनेह वढाइ ।
मानि मातु कर नात वलि[१०], सुरति बिसरि जनि जाइ ॥५७॥

---

१ कठिन दुःख २ चन्द्रमा ३ टेढ़ी ४ साँप छछूंदर को चूहा समझ पकड़ ले, यदि खाय तो मरै और उगले तो अन्धा होवे। ५ जिद ६ भाई भाई में भेदभाव ७ स्त्रीधर्म (पतिव्रत धर्म) ८ तिलक ९ आयु १० आयु के अन्तिम भाग में सूर्यवंशी राजा वाणप्रस्थ लेकर वन जाते थे। १० बलिहारी जाऊँ।

†पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते ।
‡मातुर्दश गुणा मान्या विमाता धर्मभीरुणा ॥

। पितर सब तुम्हहिं गोसाईं । रामहु पलक नयन की नाईं[१] ॥
तरि अनु[२] प्रियपरिजन मीना । तुम्ह करुनाकर धरमधुरीना ॥
म विचार सोइ करहु उपाई । सबहि जिअत जेहि भेंटहु आई ॥
हु सुखेन[३] बनहिं बल जाऊँ । करि अनाथ जन परिजन-गाऊँ ॥
कर आजु सुकृतफल बीता । भयेउ करालुकालु बिपरीता ॥
विधि विलपि चरन लपटानी । परमअभागिनि आपुहि जानी ॥
न दुसह-दाहु उर व्यापा । बरनि न जाइ विलापकलापा ॥
उठाइ मातु उर लाई । कहि मृदुबचन बहुरि समुझाई ॥

दो०—समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ ।
जाइ सासु-पद-कमल जुग, वंदि बैठि सिर नाइ ॥४८॥

हि असीस सासु मृदु बानी । अतिसुकुमारि देखि अकुलानी ॥
नमित मुख[४] मोचति सीता । रूपरासि पति-प्रेम-पुनीता[५] ॥
न चहत बन जीवननाथू । केहि सुकृती सन होइहि साथू ॥
तनु प्रान कि केवल प्राना । विधि करतब कछु जाइ न जाना ॥
चरननख लेखति धरनी । नूपुर मुखर[६] मधुर कवि बरनी ॥
हुँ प्रेमबस विनती करहीं । हमहिं सीयपद जनि परिहरहीं ॥
निलोचन मोचति बारी । बोली देखि राममहतारी ॥
सुनहु सिय अतिसुकुमारी । सासु ससुर-परिजनहि पियारी ॥

दो०—पिता जनक भूपालमनि, ससुर भानुकुल भानु[७]
पति रवि कुल-कैरव[८]-विपिन विधु गुन रूप निधानु ॥४९॥

---

१ भाँति २-१४ वर्ष की सीमा जल है ३ सुख पूर्वक ४ नीचा मुँह करके
ति प्रेम द्वारा पवित्र ६ विछुओं की ध्वनि ७ भानुकुल के भानु षष्ठी,
वि का कुल रविकुल-षष्ठी तत्पु० कैरवों का विपिन, कैरव-विपिन, ष० त०
लरूपी कैरवों का विपिन, रविकुल-कैरव विपिन रूपक कर्मधारय,
कुल-कैरव विपिन विधु-रविकुलरूपी कैरवों के विपिन कोविधु-ष० त०

मैं पुनि पुत्रवधू प्रिय पाई । रूपरासि गुन सीलु सुहाई ॥
नयनपुतरि करि[1] प्रीति बढाई । राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई ॥
कलपबेलि जिमि बहु विधि लाली[2] । सींचि सनेह सलिल[3] प्रतिपाली ॥
फूलत फलत भयउ विधि वामा । जानि न जाय काह परिनामा ॥
पलँगपीठ तजि गोद हिंडोरा[4] । सिय न दीन्ह पगु अवनि[5] कठोरा ॥
जिअनमूरि[6] जिमि जोगवत रहऊँ । दीपबाति नहिं टारन कहऊँ ॥
सोइ सिय चलन चहति वन साथा । आयसु काह होइ रघुनाथा ॥
चंद-किरन-रस-रसिक चकोरी[8] । रविरुख नयन सकै किमि जोरी ॥

दो०—करि, केहरि, निसिचर चरहिं, दुष्ट जंतु वन भूरि ।
विषवाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवन मूरि[9] ॥६॥

वनहित कोल किरात किसोरी । रची विरंचि विषय सुख भोरी[10] ॥
पाहन कृमि[11] जिमि कठिन सुभाऊ । तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ ॥
कै तापसतिय काननजोगू । जिन तपहेतु तजा सब भोगू ॥
सिय वन वसिहि तात केहि भाँती । चित्रलिखित कपि[12] देखि डराती ॥
सुर-सर-सुभग वनज वन चारी । डावर-जोग कि हंसकुमारी ॥
अस विचार जस आयसु होई । मैं सिख देउँ जानकिहि सोई ॥
जौं सिय भवन रहै कह अंबा । मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा[13] ॥
सुनि रघुबीर मातु-प्रिय बानी । सील सनेह सुधा[14] जनु सानी ॥

दो०—कहि प्रियवचन विवेक मय, कीन्ह मातु परितोष[15] ।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि विपिन गुन-दोष[16] ॥

---

१ भाँति २ लाड किया ३ पानी ४ पलग, पीठ, (पीढ़ा) गोद और हिंडोला ५ धरती ६ सजीवनी बूटी ७ देखती ८ चन्द्र किरण रस-रसिक-(चकोरी का विशे- षण) ष्ठी त पु० ९ बूटी १० विषय-सुख से रहित पंचमी तत्पु० ११ पहाड़ी कीड़े १२ चित्र में लिखित-कपि १३ सहारा १४ अमृत १५ सन्तुष्ट १६ गुन और दोष गुन-दोष, (द्वन्द्व) विपन-गुन दोष विपन के गुन और दोष (षष्ठीतत्पु०)

ु समीप कहत सकुचाहीं । बोले समउ समुझि मन माँही ॥
ा-कुमारि सिखावन सुनहू आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू ॥
पन मोर नीक जो चहहू । वचन हमार मानि गृह रहहू ॥
यसु मोरि सासुसेवकाई । सब विधि भामिनी भवन भलाई ॥
ते अधिक धरमु नहिं दूजा सादर सासु ससुर पद पूजा ॥
जब मातु करिहि सुधि मोरी । होइहि प्रेमविकल मति भोरी[1] ॥
तब तुम्ह कहि कथा पुरानी । सुंदरि समुझायेहु मृदुबानी ॥
उँ सुभाय सपथ सत मोही । सुमुखि मातुहित राखौं तोही ॥

दो०—गुरु-स्रुति समत[2] धरमफलु, पाइअ बिनहिं कलेस[3] ।
हठबस सब संकट[4] सहे, गालव* नहुष नरेश × ॥६१॥

---

१ भारी है मति जिसकी (बहुब्रीहि , २ गुरु और श्रुति से (द्वारा)
त (करण कारक) ३ (क्लेश) दुःख ४ आपत्तियाँ ।

*गालव—ये विश्वामित्र जी के शिष्य थे । इनकी सेवा के वशीभूत होकर
ने इन्हें विद्या में दक्ष कर दिया । जब ये पूर्ण विद्वान् होगये, तब इन्होंने गुरु
दक्षिणा लेने का अनुरोध किया । गुरु ने कहा कि "हम तेरी सेवा से
हैं, हमें दक्षिणा नहीं चाहिये" परन्तु इन्होंने हठ न छोडी । तब तो गुरु
धित होकर ८०० श्याम वर्ण घोड़े माँगे । गालव बड़े कष्ट से केवल
घोड़े इकट्ठे कर सके ।

× नहुष—पुरूरवा का ज्येष्ठ पुत्र नहुष बड़ा प्रतापी और धर्मात्मा था ।
त्र के मारने से इन्द्र को ब्रह्म हत्या लग गई इससे वह छिप गया । इन्द्रासन
ाली होने के कारण नहुष को उस पर बिठला दिया गया । गद्दी पर बैठने से
को अभिमान होगया और इन्द्राणी से विवाह करना चाहा । नहुष को
पर इन्द्राणी ने कहा कि यदि राजा 'अपूर्व' सवारी में बैठकर आवें तो
इच्छा पूर्ण हो सकती है । राजा यह जानकर सप्तर्षि से पालकी उठवा
या । पालकी में बैठकर अगस्त्य ऋषि के सिर पर पैर रख दिया और सर्प
(जल्दी चलो) कहने लगा । इस पर अगस्त्य ऋषि ने क्रोधित होकर कहा
म सर्प हो जाओ । राजा उनके शाप से सर्प हो गया ।

मैं पुनि करि प्रमान[1] पितुवानी । वेगि फिरव सुनु सुमुखि सया
दिवस जात नहिं लागिहिं वारा । सुँदरि सिखवनु[2] सुनहु हमा
जौं हठ करहु प्रेमवस वामा[3] । तौ तुम्ह दुख पाउव परिना
काननु कठिन भयकर भारी । घोर घामु, हिम, वारि वयारं
कुस कंटक मग काँकर नाना । चलत पयादेहिं विनु पदत्रान
चरनकमल मृदु मंजु तुम्हारे । मारग अगम भूमिधर[6] भ
कंदर खोह नदी नद नारे । अगम अगाध[7] न जाहिं निहा
भालु वाघ वृक[9] केहरि नागा । करहिं नाद सुनि धीरजु भ...

दो०—भूमि सयन वलकलवसन[10], असनु[11] कंद फल-मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, सबइ समय अनुकूल ॥६

नर अहार रजनीचर करहीं । कपटवेप विधि कोटिक धरहीं
लागै अति पहार कर पानी । विपिन-विपति नहिं जाइ वखानी
व्याल कराल विहँग वन घोरा । निसिचर-निकर[12] नारि-नर-चोर
डरपहि धीर गहन[13] सुधि आएँ । मृगलोचनि तुम्ह भीरु[14] सुभा
हंस-गवनि तुम्ह नहि वन जोगू । सुनि अपजसु मोहि देइहिं लो
मानस-सलिल-सुधा प्रतिपाली । जिअइ कि लवनपयोधि मराल
नव-रसाल-वन विहरनसीला । सोह कि कोकिल विपिन करील
रहहु भवन अस हृदय विचारी । चंदवदनि दुख कानन भा

दो०—सहज सुहृद-गुरु स्वामि सिख, जो न करै सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हितहानि ॥६४॥

सुनि मृदुवचन मनोहर पिअके । लोचन ललित‡ भरे जल सिय

---

१ पूर्ण २ (शिक्षा) उपदेश ३ स्त्री, (उदासीनता की दशा का सम्बो
४ हवा ५ जूता ६ पर्वत ७ गहरे ८ देखने से भय मालूम होता है । ९ भे
१० छाल के वस्त्र ११ भोजन १२ राक्षसों का समूह १३ वन १४ डरपोक

‡ पाठान्तर 'नलिन' ।

। सिय दाहक भै कैसें[‡] । चकइहि सरद चंद निसि जैसें ॥
न आव बिकल बैदेही । तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥
रोकि बिलोचनबारी । धरि धीरजु उर अवनिकुमारी[1] ॥
सासुपग कह कर जोरी । छमबि देवि बडि अबिनय[2] मोरी॥
प्रानपति मोहि सिख सोई । जेहि बिधि मोर परमहित होई ॥
नि समुझि दीख मन माहीं । पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं ॥

—प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान ।
तुम्ह बिनु रघुकुल-कुमुद बिधु सुरपुर नरकसमान ॥६५॥

पिता भगिनी प्रिय भाई । प्रिय परिवारु सुहृद-समुदाई ॥
ससुर गुरु सजन सहाई । सुत सुन्दर सुसील सुखदाई ॥
गि ,नाथ नेह अरु नाते । पिय बिनु तियहि तरनिहुँ[3] ते ताते॥
धनु धामु धरनि पुरराजू । पति बिहीन सबु सोक समाजू ॥
रोगसम, भूषन भारू । जम-जातना सरिस[4] संसारू ॥
ाथ तुम्ह बिनु जग माँहीं । मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥
सकल सुख साथ तुम्हारे । सरद बिमल बिधु-बदनु[5] निहारे ॥

—खग मृग परिजन नगर बनु बलकल बिमल दुकूल[6] ।
नाथ साथ सुर-सदन सम परनसाल[7] सुखमूल ॥६६॥

वी बनदेव उदारा । करिहहि सासु-ससुर-सम सारा[8] ॥
किसलय साथरी सुहाई । प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई ॥
मूल फल अमिअ[9] अहारू । अवध-सौध सत सरिस पहारू[10] ॥
बिनु प्रभु पद कमल बिलोकी । रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी॥

। सीताजी, २ ढीठता ३ सूर्य ४ यम दण्ड के सदृश ५ शरद ऋतु का
विधु (उसके समान उजाला मुख) इस प्रकार विग्रह है ६ रेशमी वस्त्र
ा ८ सार सँभार ९ (अमृत) १० पनारू अवधमतसौध-(महल) सरिस, पहाड़
ा के सौ भवना के तुल्य है । ‡ विषमालंकार—कारण के विरुद्ध कार्य ।

बन-दुर्ग नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घने
प्रभु वियोग लव-लेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना
अस जिय जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाँडिअ जनि
बिनती बहुत करउँ का स्वामी। करुनामय उर-अंतर-जामी

दोहा—राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत जानिअहिं प्रान।
दीनबंधु सुन्दर सुखद, सील सनेह निधान ॥६४

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल स्रम हरिहौं
पाँय पखारि बैठि तरुछाहीं। करिहौं बाउ मुदित मनमाहीं
स्रम-कन-सहित[1] स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पे
सम महि तृन तरु-पल्लव डासी[2]। पाँइ पलोटिहि सब निसि दासी
बार बार मृदु मूरति जोही[3]। लागिहि तात बयारि न मो
को प्रभु संग मोहि चितवनिहारा। सिंघबधुहि जिमि ससक[4] सिआ
मैं सुकुमारि नाथ बनजोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहँ भो

दोहा—ऐसेउ बचन कठोर सुनि, जौं न हृदय बिलगानि।
तौ प्रभु-बिषम-बियोग-दुखु, सहिहहिं पाँवर प्रान ॥६

अस कहि सीय बिकल भै भारी। बचन बियोग न सकी सँभा
देखि दसा रघुपति जिय जाना। हठि राखे नहि राखहि प्रा
कहेउ कृपालु भानु कुल नाथा। परिहरि सोचु चलहु बन सा
नहिं बिषाद कर अवसर आजू। बेगि करहु बन-गवन-समा
कहि प्रियबचन प्रिया समुझाई। लगे मातुपद आसिष पा
बेगि प्रजादुख मेटब आई। जननी निठुर[6] बिसरि जनि जा

१ पसीनों की बूँदों सहित २ बिछाकर ३ देखकर ४ खरहा ५ नीच ६ (नि

† काकु वक्रोक्ति अलंकार, जहाँ ध्वनि से उल्टा अर्थ निकले, जैसे मैं सुकुमारि और आप बन के योग्य हैं! अर्थात् नहीं।

हि दसा निधि बहुरि कि मोरी । देखिहौं नयन मनोहर जोरी ॥
सुघरी तात कब होइहि । जननी जिअत बदनबिधु जोइहि ॥

दो०—बहुरि वच्छ[1] कहि लालु कहि, रघुपति रघुबर तात ।
कबहिं बोलाइ लगाइ हिय हरषि निरखिहौं गात ॥६९॥

सनेह कातरि[2] महतारी । बचनु न आव बिकल भै भारी ॥
प्रबोध कीन्ह बिधि नाना । समउ सनेहु न जाइ बखाना ॥
जानकी सासुपग लागी । सुनिअ माय मैं परम अभागी
समय दैव बन दीन्हा । मोर मनोरथ सुफल न कीन्हा ॥
छोभु[3] जनि छाँडिअ छोहू । करमु कठिन कछु दोसु न मोहू ॥
सिय बचन सासु अकुलानी । दसा कवनि बिधि कहौं बखानी ॥
बार लाइ उर लीन्ही । धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही ॥
होउ अहिवातु[4] तुम्हारा । जब लगि गंग जमुन जल धारा ॥

दो०—सीतहि सासु असीस सिख, दीन्हि अनेक प्रकार ।
चली नाइ पदपदुम सिरु, अति हित बारहिं बार ॥७०॥

ग जब लछिमन पाए । ब्याकुल मलिन बदन उठि धाए ॥
पुलक तन नयन सनीरा । गहे चरन अतिप्रेम अधीरा ॥
सकत कछु चितवत ठाढे । मीनु दीनु जनु जल तें काढे ॥
दय निधि का होनिहारा । सब सुखु सुकृत सिरान[5] हमारा ॥
हिं काह कहब रघुनाथा । रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा ॥
बिलोकि बंधु करजोरें । देह गेह[6] सब सन तृन तोरें ॥
बचनु राम नयनागर[7] । सील सनेह-सरल-सुख-सागर ॥
प्रेमबस जनि कदराहू । समुझि हृदय परिनाम उछाहू ॥

(वत्स) २ सनेह से कातर वा सनेह म कातर, इस प्रकार तृतीया
मी तत्पु० दोनों हो सकते हैं ३ दुःख ४ कृपा ५ सौभाग्य ६ समाप्त
(शूद) ८ नीति म चतुर ।

दो०—मातु-पिता गुरु-स्वामि-सिख, सिर धरि करहि सुभाय।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर, नतरु[1] जनमु जग जाय॥

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु-पितु-पद सेवका
भवन भरत रिपुसूदन[2] नाहीं। राउ वृद्ध, मम दुख मन
मैं वन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहि विधि अवध
गुरु पितु मात प्रजा परिवारू। सब कहँ परै दुसह-दु
रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिका
रहहु तात अस नीति विचारी। सुनत लषनु भये व्याकुल भा
सिखरे[4] बदन सूखि गए कैसे। परसत[6] तुहिन[7] तामरस[8] जै

दो०—उतरु न आवत प्रेमवस, गहे चरन अकुलाय।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह, तजहु त काह बसाइ॥

दीन्हि मोहि सिख नीक[8] गोसाईं। लागि अगम[9] अपनी कदरा
नरवर धीर धरम धुर-धारी। निगम[11] नीति कहँ ते अधिका
मैं सिसु प्रभु-सनेह-प्रतिपाला। मदरुमेरु[12] कि लेहि मराल
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू
जहँ लगि जगत सनेह सगाई[14]। प्रीतिप्रतीति निगम निजु[15] ग
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर-अंतरजा
धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति-भूति सुगति प्रिय जा
मन-क्रम-बचन चरनरत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि स

१ नहीं तो २ शत्रुघ्न ३ घोर दुःख का बोझ ४ कोमल, नम्र ५ (स्पर्श)
६ पाला ७ कमल ८ अच्छी ९ कठिन १० कातरता से ११ शास्त्र १२ मद
तथा सुमेरपर्वत १३ विश्वास कीजिये १४ सम्बन्ध १५ अपने, स्वयं [कया
बच्चा मदराचल तथा सुमेरपर्वत को उठा सकता है? अर्थात नहीं, ऐसे ही मैं
प्रेम से पाला हुआ बालक राजनीति तथा वेद का अधिकारी नहीं हो सक

दो०—करुनासिंधु सुबंधु के, सुनि मृदु बचन विनीत[1]।
समुझाए उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत[2] ॥ ७३ ॥

मागहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई ॥
मुदित भये सुनि रघुबर बानी। भयेउ लाभ बड़ गइ[3] बड़ि हानी ॥
हरषित हृदय मातु पहिं आए। मनहुँ अंध फिर लोचन पाए ॥
जाइ जननि-पग नायेउ माथा। मनु रघुनंदन-जानकि साथा ॥
पूँछे मातु मलिन मन देखी। लषन कहीं सब कथा विसेखी ॥
गई सहमि[4] सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव[5] जनु चहुँ ओरा ॥
लषन लखेउ भा अनरथ आजू। एहिं सनेह बस करब अकाजू ॥
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग, बिधि, कहहि कि नाहीं ॥

दो०—समुझि सुमित्रा राम सिय रूपु-सुसील सुभाउ।
नृप सनेह लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ[6] ॥७४॥

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी ॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही ॥
अवध तहाँ जहँ राम-निवासू। तहइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू ॥
जौं पै सीय-रामु बन जाँहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं ॥
गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहि सकल प्रान की नाईं ॥
राम प्रानप्रिय जीवन जी के[7]। स्वारथरहित सखा[8] सबही के ॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहि राम के नातें ॥
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवनुलाहू[9] ॥

दो०—भूरि भागभाजनु[10] भयेहु मोहि समेत, बलि जाउँ।
जौं तुम्हरे मन छाँडि छलु कीन्ह राम-पद ठाउँ ॥

---

१ नम्र २ भयभीत ३ दूर होगई ४ सन्नाटे में आगई, दंग रह गई ५ अग्नि ६ कुघात ७ जीव के जीवन (प्राण) हैं ८ प्यारे (सखा ४ प्रकार के होते हैं १ सुहृद, २ प्रिय ३ न्यून ४ नम्र) ९ जीवन का लाभ। १० बड़े भाग्य शाली।

पुत्रवती जुवती[1] जग सोई । रघु-पति भगतु जासु सुत होई ॥
नतरु बाँझ भलि, बादि[2] बिआनी[3] । रामबिमुख-सुत तें हितहानी ॥
तुम्हरेहि भाग रामु बन जाँहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥
सकल सुकृत कर बड फल एहू । राम-सीय-पद सहज सनेहू ॥
रागु[4] रोषु इरिषा[5] मदु मोहू । जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू ॥
सकल प्रकार बिकार[6] बिहाई । मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू । सँग पितु मातु राम सिय जासू ॥
जेहि न रामु बन लहहिं कलेसू । सुत सोइ करहु इहै उपदेसू ॥
छंद—उपदेसु एहु जेहि जात तुम्हरे, रामसिय सुख पावहीं ।
पितु-मातु-प्रिय-परिवारु-पुर-सुख-सुरति बन बिसरावहीं ॥
तुलसी-सुतहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई ।
रति[7] होउ अबिरल[8] अमल[9] सिय-रघुबीर-पद नितनित नई ॥
सो०—मातु चरन सिरु नाइ, चले तुरत संकित हृदय ॥
बागुर[10] बिषम[11] तोराइ, मनहुँ भाग मृगु भागबस ॥ ॥७४॥
गए लषनु जहँ जानकिनाथू । भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू ॥
बंदि राम-सिय चरन सुहाए । चले संग नृपमंदिर आए ॥
कहहिं परसपर पुर नर-नारी । भलि बनाइ बिधि बात बिगारी ॥
तन कृस[12] मन दुखु, बदन मलीने । बिकल मनहुँ माखी मधु छीने ॥
कर मीजहिं,[13] सिरधुनि पछिताहीं । जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं ॥
भै बडि भीर भूप-दरबारा । बरनि न जाइ बिषादु अपारा ॥
सचिव उठाइ राउ बैठारे । कहि प्रिय बचन रामु पगु धारे ॥
सियसमेत दोउ तनय निहारी । ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी ॥

---

१ स्त्री २ व्यर्थ ३ पुत्र पैदा किया ४ प्रीति ५ ईर्षा, जलन ६ मा... गति ७ प्रीति ८ अनुपम ९ पवित्र १० फन्दा ११ कठिन १२ दुर्बल ... मसल है ।

॥ यहां अयोध्या में रहना फन्दा, लक्ष्मण मृग (उत्प्रेक्षालंकार) ।

दो०—सीयसहित सुत सुभग[1] दोउ, देखि देखि अकुलाय।
बारहि बार सनेहबस, राउ लेइ उर लाइ ॥७७॥

सकै न बोलि बिकल नरनाहू। सोकजनित उर दारुन दाहू ॥
नाइ सीसु पद अति अनुरागा। उठि रघुबीर बिदा तब माँगा ॥
पितु असीसु आयसु मोहि दीजै। हरषसमय बिसमउ कत कीजै ॥
तात किए प्रिय प्रेमप्रमादू[2]। जसु जग जाइ, होइ अपबादू[3] ॥
सुनि सनेहबस उठि नरनाहाँ। बैठारे रघुपति गहि बाहाँ ॥
सुनहु तात तुम्ह कहँ मुनि कहहीं। राम चराचरनायक अहहीं[4] ॥
सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदय बिचारी ॥
करै जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई ॥

दो०—औरु करै अपराध कोउ, और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवतगति को जग जानै जोगु ॥७८॥

राय रामराखन हित लागी। बहुत उपाय किये छल त्यागी ॥
लखी रामरुख, रहत न जाने। धरम धुरंधर धीर सयाने ॥
तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। अतिहित बहुत भाँतिसिख दीन्ही
कहि बन के दुख दुसह सुनाए। सासु ससुर पितु सुख समुझाए ॥
सियमन रामचरन-अनुरागा। घरु न सुगमु, बनु बिषमु न लागा ॥
औरउ सबहि सीय समुझाई। कहिकहिबिपिन बिपति अधिकाई॥
सचिवनारि गुरुनारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदु बानी ॥
तुम्ह कहँ तौ न दीन्ह बनबासू। करहु जो कहहिं ससुर गुर सासू ॥

दो०—सिख सीतलि हित मधुर मृदु, सुनि सीतहि न सोहानि।
सरद चंद चंदनि लगत, जनु चकई अकुलानि ॥७९॥

१ सुन्दर २ प्रेम से भूल ३ अपयश ४ चर और अचर सृष्टि के स्वामी है।

* तृतीय विषम अलंकार--जहां कारण के गुण से कार्य का गुण या कारण की क्रिया से कार्य की क्रिया विरुद्ध हो।

सीय सकुच वस उतरु न देई । सो सुनि तमकि[1] उठी कैकेई ।
मुनि-पट-भूषन-भाजन आनी । आगे धरि बोली मृदुबानी ॥
नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा । सील सनेह न छाँडिहि भीरा ॥
सुकृत सुजसु परलोक नसाऊ । तुमहि जान वन कहिहि न काऊ ॥
अस विचारि सोइ करहु जो भावा । राम जननि सिख सुनि सुख पावा ॥
भूपहि बचन बान सम लागे । करहिं न प्रान पयान[2] अभागे ॥
लोग बिकल, मुरुछित नरनाहू । काह करिअ, कछु सूझ न काहू ॥
रामु तुरत मुनिवेषु वनाई । चले जनक जननी सिरु नाई ।

दोहा—सजि वन साजु समाजु सब, बनिता[3]-बंधु समेत ।
बदि विप्र गुरु-चरन प्रभु, चले करि सबहि अचेत ॥८०

निकसि वसिष्ठ द्वार भये ठाढे । देखे लोग विरह-दव[4] दाढे[5] ।
कहि प्रिय वचन सकल समझाए । विप्रवृन्द रघुवीर वोलाए ।
गुरु सन कहि बरषासन[6] दीन्हे । आदर दान बिनयवस कीन्हे ।
जाचक दान मान सतोषे । मीत पुनीत प्रेम परितोषे ।
दासी दास बोलाइ बहोरी । गुरहिं सौंपि बोले कर जोरी,
सब कै सार-सँभार गोसाईं । करवि जनक-जननी की नाईं[7]
बारहिं बार जोरि जुगपानी[8] । कहत रामु सब सन मृदुबानी
सोइ सब भाँति मोर हितकारी । जेहि तें रहै भुआल सुखारी

दोहा—मातु सकल मोरे विरह जेहिं न होहिं दुख दीन ।
सोइ उपाय तुम्ह करेहु सब पुरजन[9] परम प्रवीन ॥८१

एहि बिधि राम सबहि समुझावा । गुरु-पद-पदुम[10] हरषि सिरु नाा
गनपति[11] गौरि गिरीसु[12] मनाई । चले असीस पाइ रघुराई

१ क्रोधित हो २ (प्रयाण) गवन ३ स्त्री ४ वियोग की आग ५ उ
हुए ६ (बरस + असन) एक वर्ष का भोजन ७ भाँति ८ (जुग पा
९ नगर-वासी १० पद्मरूपी पद, गुरु के पद पद्म, ११ गणेशजी १२ महा

रामु चलत अति भयेउ विषादू । सुनि न जाइ पुर आरतनादू[1] ॥
कुसगुन लंक, अवध अति सोकू । हरष विषाद[2] निवस सुरलोकू ॥
गइ मुरछा तब भूपति जागे । बोलि सुमन्त्रु कहन अस लागे ॥
रामु चले वन प्रान न जाहीं[3] । केहि सुख लागि रहत तन माहीं ॥
एहि तें कवन व्यथा बलवाना । जो दुखु पाइ तजहि तनु प्राना ॥
पुनि धरि धीर कहै नरनाहू । लै रथ संग सखा तुम्ह जाहू ॥

दो०— सुठि[4] सुकुमार कुमार दोउ, जनकसुता सुकुमारि ।
रथ चढाइ देखराइ वनु फिरेहु गए दिन चारि ॥८२॥

जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई । सत्यसंध[5] दृढव्रत रघुराई ॥
तौ तुम्ह विनय करेहु कर जोरी । फेरिअ प्रभु मिथिलेस-किसोरी ॥
जब सिय कानन देखि डेराई । कहेहु मोर सिख अवसरु पाई ॥
सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू । पुत्रि फिरिअ वन बहुत कलेसू ॥
पितुगृह कबहुँ, कबहुँ ससुरारी । रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी ॥
एहि विधि करेउ उपाय कदंबा[6] । फिरइ त होइ प्रानअवलंबा ॥
नाहिं त मोर मरनु परिनामा । कछु न बसाइ भए विधि वामा ॥
अस कहि मुरुछि परा महि राऊ । राम लषनु सिय आनि देखाऊ ॥

दो०—पाइ रजायसु नाइ सिरु, रथु अति बेग बनाइ ।
गयेउ जहाँ बाहर नगर, सीयसहित दोउ भाइ ॥ ८३ ॥

तब सुमंत नृपवचन सुनाए । कर विनती रथ रामु चढाए ॥
चढि रथ सीयसहित दोउ भाई । चले हृदय अवधहि सिरु नाई ॥
चलत राम लखि अवध अनाथा । विकल लोग सब लागे साथा ॥
कृपासिंधु बहु विधि समुझावहिं । फिरहिं प्रेमवस पुनि फिरि आवहिं ॥

---

१ करुणा पूर्ण शब्द २ विषाद,अयोध्या की दशा देखकर और हर्ष अपने शत्रु राक्षसों के नष्ट होने की आशा से। ३ प्रबल कारण होने पर भी कार्य न हो (विशेषोक्ति अलंकार) ४ सुष्ठु ५ सत्य प्रतिज्ञा वाले ६ समूह अनेक ।

धरमु न दूसर सत्यसमाना । आगम निगम पुरान बखाना ॥
मैं सोइ धरमु सुलभ[1] करि पावा । तजे तिहूँपुर अपजसु छावा ॥
सभावित[2] कहँ अपजसलाहू । मरन-कोटि सम दारुनदाहू[3] ॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ । दिएँ उतर फिरि पातकु लहऊँ ॥

दो०—पितुपद गहि कहि कोटि नति, विनय करब कर जोरि ।
चिंता कवनिहुँ बात कै तात करिय जनि मोरि ॥९६॥

तुम्ह पुनि पितुसम अतिहित मोरें । विनती करौं तात कर जोरें ॥
सब विधि सोइ करतव्य तुम्हारे । दुख न पाव पितु सोच हमारे ॥
सुनि रघुनाथ-सचिव-सबादू । भयेउ सपरिजन[4] विकल निषादू ॥
पुनि कछु लषन कही कटु बानी । प्रभु बरजे[5] वड अनुचित जानी ॥
सकुचि राम निज सपथ देवाई । लषनसँदेसु कहिअ जनि जाई ॥
कह सुमंत्र पुनि भूप सँदेसू[6] । सहि न सकहि सिय विपिन[7] कलेसू ॥
जेहि विधि अवध आव फिरि सीया । सोइ रघुवरहिं तुम्हहि करनीया ॥
नतरु निपट अवलंब-विहीना[8] । मैं न जिअब जिमि जलविनु मीना ॥

दो०—मइकें[9] ससुरे सकल सुख, जबहिं जहाँ मनु मान ।
तहँ तब रहहि सुखेन सिय जब लगि विपति-विहान[10] ॥९७॥

विनती भूप कीन्ह जेहि भाँती । आरति प्रीति न सो कहि जाती ॥
पितु-सदेसु सुनि कृपानिधाना । सियहिं दीन्हि सिख कोटि विधाना[11] ॥
सासु ससुर गुर प्रिय परिवारू । फिरहु त सब कर मिटै खभारू[12] ॥
सुनि पति वचन कहत वैदेही । सुनहु प्रानपति परम सनेही ॥
प्रभु करुनामय परम विवेकी । तनु तजि रहत छाँह किमि छेंकी[13] ॥
प्रभा[14] जाइ कहँ भानु विहाई । कहँ चंद्रिका[15] चंद तजि जाई ॥
पतिहिं प्रेममय विनय सुनाई । कहति सचिव सन गिरा[16] सुहाई ॥

---

१ आसान २ प्रतिष्ठित पुरुष ३ कठिन दुखदाई ४ कुटुम्ब स[हित] ५ रोक दिये ६ समाचार ७ जंगल ८ विना सहारे ९ पिता के घर १० [न] होय ११ करोड़ो तरह की १२ दुःख १३ छोड़कर १४ धूप १५ चाँद १६ वाणी ।

तुम्ह पितु ससुर-सरिस हित-कारी । उतरु देउँ फिरि अनुचित भारी ॥

दो०—आरति[१]-बस सनमुख भइउँ, बिलगु[२] न मानब तात ।
आरज[३]-सुत-पद-कमल बिनु, बादि जहाँ लगि नात ॥९७॥

पितु बैभव बिलास[४] मैं डीठा[५] । नृप-मनि मुकुट[६] मिलत पद्पीठा[७] ॥
सुख निधान अस पितु-गृह मोरे । पिय बिहीन[८] मन भाव न भोरे ॥
ससुर चक्कवइ[९] कोसल-राऊ । भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
आगे होइ जेहि सुरपति लेई । अरध सिहासन आसन देई ॥
ससुर एतादृस[१०] अवध निवासू । प्रिय परिवारु मातु सम सासू ॥
बिनु रघुपति-पद पदुम परागा । मोहि कोउ सपनेहु सुखद न लागा ॥
अगम पथ बन भूमि पहारा । करि केहरि सर सरित अपारा ॥
कोल किरात कुरंग[११] बिहंगा[१२] । मोहि सब सुखद प्रानपति संगा ॥

दोहा०—सासु ससुर सन मोरि हुति[१३] बिनय करबि परि पाय ।
मोरि सोचु जनि करिअ कछु मैं बन सुखी सुभाय ॥९९॥

प्रान-नाथ प्रिय देवर साथा । बीर धुरीन[१४] धरे धनु भाथा ॥
नहिं मग स्रम भ्रम-दुख मन मोरे । मोहि लगि सोच करिअ जनि भोरे[१५] ॥
सुनि सुमन्त्र सिय सीतल-बानी । भयेउ बिकल जनु फनि[१६] मनिहानी[१७] ॥
नयन सूझि नहिं सुनइ न काना । कहि न सकइ कछु अति अकुलाना ॥
रामु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती । तदपि होत नहिं सीतल छाती ॥
जतन[१८] अनेक साथ हित[१९] कीन्हे । उचित उतर रघुनन्दन दीन्हे ॥
मेटि जाइ नहिं रामरजाई[२०] । कठिन करमगति कछु न बसाई ॥
राम-लखन सिय पद सिरु नाई । फिरेउ बनिकु जिमि मूर[२१] गँवाई ॥

१ दुखी होकर २ बुरा ३ (आर्य्य) श्वसुर ४ आनंद ५ देखा है ६ मणियों से बने हुए राजाओं के मुकुट ७ पैरों पर ८ रहित ९ (चक्रवर्ती) १० ऐसा ११ हरिण १२ पक्षी १३ मेरी ओर से १४ मुखिया १५ भूल कर भी १६ सर्प १७ मणि रहित १८ यत्न १९ संग के लिये २० रामाज्ञा २१ मूल धन, पूँजी ।

दो०—रथ हाँकेउ, हय[1] राम तन, हेरि-हेरि[2] हिहिनाहिं।
देखि निषाद विषादबस, धुनहिं सीस पछिताहिं ॥१००

जासु वियोग[3] विकल पसु ऐसे। प्रजा मातु पितु जीहहिं कैसे ॥
बरबस[4] रामु सुमन्त्रु पठाए। सुरसरि तीर आप तब आए ॥
माँगी नाव, न केवट आना[5]। कहै तुम्हार मरमु मैं जाना ॥
चरन-कमल-रज कहँ सबु कहई। मानुषकरनि मूरि[6] कछु अहई ॥
छुअत सिला[7] भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई ॥
तरनिउँ मुनिघरनी होइ जाई। बाट[8] परै मोरि नाव उड़ाई ॥
एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू। नहि जाना कछु अउर कबारू[9] ॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पदपदुम पखारन[10] कहहू ॥

छंद—पदकमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साँची कहौं ॥
बरु तीर मारहु लखन पै जब लगि न पायँ पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास-नाथ कृपालु पारु उतारिहौं ॥

सो०—सुनि केवट के बयन, प्रेम लपेटे अटपटे[11]।
बिहँसे करुना अयन, चितै जानकी लखन-तन ॥१०१॥

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई ॥
बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलम्ब उतारहि पारू ॥
जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा ॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहिं जगु किए तिहुँ पगहुँ ते थोरा ॥
पदनख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोह मति करषी ॥
केवट रामरजायसु पावा। पानि कठवता[13] भरि लेइ आव

१ घोड़ा २ देखकर ३ जुदाई ४ बलात्, जबरदस्ती ५ लाया ६ औष
७ पत्थर ८ जीविका की राह ९ कारोबार १० कमलरूपी चरण धोने
आज्ञा दीजिये ११ अस्पष्ट १२ हर लिया १३ पात्र विशेष ।

अति आनद उमगि अनुरागा । चरनसरोज पखारन लागा ॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं । एहि सम पुन्यपुंज[1] कोउ नाहीं ॥

दो०—पद पखारि जलु पान करि, आपु सहित परिवार ।
पितर पारु[2] करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयेउ लेइ पार ॥१०२॥

उतरि ठाढ भए सुरसरिरेता । सीय रामु गुह लखन समेता ॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा । प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा ॥
पियहिय की सिय जाननिहारी । मनिमुँदरी मन मुदित उतारी ॥
कहेउ कृपालु लेहु उतराई । केवट चरन गहे अकुलाई ॥
नाथ आजु मैं काह न पावा । मिटे दोष-दुख दारिद-दावा ॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी । आजु दीन्हि बिधि बनि भलि भूरी[3] ॥
अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें । दीनदयाल अनुग्रह तोरें ॥
फिरती बार मोहि जो देवा । सो प्रसादु मैं सिर धरि लेवा ॥

दो०—बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय नहिं कछु केवट लेइ ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ ॥१०३॥

तब मज्जनु करि रघुकुल नाथा । पूजि पारथिव[4] नायेउ माथा ॥
सिय सुरसरिहि कहेउ कर जोरी । मातु मनोरथ पुरउब मोरी ॥
पति-देवर सँग कुसल बहोरी । आइ करौं जेहिं पूजा तोरी ॥
सुनि सियबिनय प्रेम-रस-सानी । भइ तब बिमल बारि बरबानी ॥
सुनु रघुबीर-प्रिया बैदेही । तव प्रभाव जग बिदित न केही ॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरें । तोहि सेवहिं सब बिधि कर जोरें ॥
तुम्ह जो हमहिं बडि बिनय सुनाई । कृपा कीन्हि, मोहि दीन्हि बडाई ॥
तदपि, देबि मैं देबि असीसा । सफल होन हित निज बागीसा ॥

दो०—प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला आइ ।
पूजहि सब मन कामना सुजसु रहिहि जग छाइ ॥१०४॥

---

१ पुण्य का समूह २ पूर्वज ३ पूरी पूरी ४ महादेव ५ पवित्रतर से श्रेष्ठ वाणी ।

गंग बचन सुनि मंगलमूला । मुदित सीय सुरसरि अनुकूला॥
तब प्रभु गुहहिं कहेउ घर जाहू । सुनत सूख मुखु भा उर दाहू॥
दीन बचन गुह कह कर जोरी । बिनय सुनहु रघु-कुल मनि[1] मोरी॥
नाथ साथ रहि पथु देखाई । करि दिन चारि चरन सेवकाई॥
जेहि बन जाइ रहब रघुराई । परनकुटी[2] मैं करबि सुहाई॥
तब मोहि कहँ जसि देब रजाई । सोइ करिहौं रघु बीर-दोहाई॥
सहज सनेह[3] राम लखि तासू । संग लीन्ह गुह हृदय हुलासू॥
पुनि गुह ग्याति बोलि सब लीन्हे । करि परितोष बिदा तब कीन्हे॥

दो०—तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ ।
सखा अनुज-सिय सहित बन गवनु[4] कीन्ह रघुनाथ॥१०५॥

तेहि दिन भयेउ बिटप तर बासू । लषन सखा सब कीन्ह सुपासू॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई । तीरथराजु दीख प्रभु जाई॥
*सचिव[6] सत्य श्रद्धा[7] प्रिय नारी । माधव[8] सरिस मीतु[9] हितकारी[10]॥
चारि पदारथ भरा भँडारू[11] । पुन्य प्रदेस देस अति चारू॥
छेत्रु अगम गढ़[12] गाढ़[13] सुहाना । सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह[14] पाना॥
सेन सकल तीरथ बर बीरा । कलुप-अनीक-दलन[15] रनधीरा॥
संगमु-सिंहासन सुठि सोहा । छत्रु अपयबट[16] मुनिमनु मोहा॥
चँवर जमुन अरु गंग तरंगा । देखि होहिं दुख दारिद भंगा॥

दो०—सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मन काम ।
बंदी बेद-पुरान-गन कहहिं बिमल गुन ग्राम[17]॥१०६॥

---

१ सूर्यकुल मे मणि सदृश द्युति वाले हैं जो २ पत्तों की झोप[ड़ी]
३ असाधारण प्रेम ४ कूँच ५ प्रात काल की शौच, संध्या वंदन इत्या[दि]
*स्वामी, अमात्य, सुहृद, कोष, राज्य, दुर्ग और बल ये सात राज्य चि[ह्न]
हैं । ६ मन्त्री ७ ईश्वरपर दृढ विश्वास ८ वेणी माधव ९ मित्र १० हि[तैषी]
११ कोष १२ किला १३ मजबूत १४ वैरी १५ पाप की सेना के [नाश]
करने वाले १६ अक्षयवट का पेड़ १७ गुणों का समूह ।

कहि सकै प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर-मृग राऊ[1] ॥
स तीरथपति देखि सुहावा। सुखसागर रघुवर सुखु पावा ॥
हँसिय लपनहि सरवहि[2] सुनाई। श्रीमुख[3] तीरथ-राज-बडाई ॥
रे प्रनाम, देखत वन वागा। कहत महातम[4] अति अनुरागा ॥
ई निधि आइ बिलोकी बेनी[5]। सुमिरत सकल सुमंगल-देनी ॥
दित नहाइ कीन्हि सिवसेवा। पूजि जथाविधि तीरथदेवा[6] ॥
प्रभु भरद्वाज पहिं आए। करत दंडवत मुनि उर लाए ॥
नि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानन्दरासि[7] जनु पाई ॥

दो०—दीन्हि असीस, मुनीस उर, अति अनंदु अस जानि।
लोचनगोचर[8] सुकृतफल[9], मनहुँ किए विधि आनि ॥१०७॥

सल प्रस्न करि आसन दीन्हे। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे ॥
द मूल फल अंकुर नीके। दिए आनि मुनि मनहुँ अमीके[10] ॥
य-लपन-जन-सहित सुहाए। अति रुचि राम मूल फल खाए ॥
निगतस्रम[11] राम सुखारे। भरद्वाज मृदु वचन उचारे ॥
जु सुफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सुफल जपु जोग बिरागू ॥
फल सकल सुभ साधन-साजू[12]। राम तुम्हहिं अवलोकत आजू ॥
भ अवधिसुभ अवधि[13] नदूजी। तुम्हरें दरस आस सब पूजी ॥
न करि कृपा देहु वर एहू। निज पद-सरसिज सहज सनेहू ॥

दो०—करम वचन मन छाँडि छल, जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं, किएँ कोटि उपचार[14] ॥१०८॥

---

१ पापों के समूह रूप हाथी के लिये सिंह समान (रूपकालंकार)
निषादराज ३ अपने मुँह से ४ (महात्म्य) फल ५ त्रिवेणी ६ तीर्थराज
यथा ७ ब्रह्मानन्द का समूह ८ आँखों के सामने ९ पुण्य का फल
अमृत के ११ स्वस्थ १२ सम्पूर्ण शुभ साधनों का सामान १३ सम्पूर्ण
मों की सीमा, परमानन्द की सीमा १४ तदबीर।

सुनि मुनिबचन रामु सकुचाने। भाव भगति आनद अघाने[1]॥
तब रघुबर मुनि सुजस सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहि सुनावा॥
सो बड सो सब-गुन-गन-गेहू। जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू॥
मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। बचन-अगोचर सुख[2] अनुभवहीं॥
यह सुधि पाइ प्रयागनिवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी॥
भरद्वाज आस्रम सब आए। देखन दसरथ-सुअन सुहाए॥
राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भए लहि लोचनलाहू॥
देहि असीस परम सुखु पाई। फिरे सराहत सुन्दरताई॥

दो०—राम कीन्ह बिस्राम निसि, प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लषन जनु, मुदित मुनिहिं सिरनाइ॥१०

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं। नाथ कहि कहि मग जा
मुनि मन बिहँसि राम सन कहहीं। सुगम[3] सकल मग तुम्ह
साथ लागि मुनि सिष्य बोलाए। सुनि मन मुदित प
सबन्हि राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहिं 'मगु[4] दीख हमा
मुनि बटु चारि सग तब दीन्हे। जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कि
करि प्रनामु रिषि आयसु पाई। प्रमुदित[5] हृदय चल रघुरा
ग्राम निकट जब निकसहिं जाई। देखहि दरसु नारिनर धाई
होहिं सनाथ जनमफलु पाई। फिरहि दुखित मनु सग पठा

दो०—बिदा किए बटु बिनय करि, फिरे पाइ मनकाम[8]।
उतरि नहाए जमुनजल, जो सरीरसम स्याम॥११०

सुनत तीरबासी नरनारी। धाए निज निज काज बिस
लषन-राम-सिय-सुन्दरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड
अति लालसा[9] सबहि मन माहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचा

१ भक्ति भाव और आनन्द में परिपूरित २ अकथनीय सुख
सान ४ रास्ता ५ प्रसन्न ६ दौडकर ७ मोहित होकर ८ अभि
९ इच्छा।

तिन्ह महँ बयबिरध सयाने। तिन्हकरि जुगुति रामु पहिचाने॥
कलकथा तिन्ह सबहिं सुनाई। बनहिं चले पितुआयसु पाई॥
नि सनिषाद सकल पछिताहीं। रानी राय कीन्ह भल नाहीं॥
हि अवसर एकु तापस आवा। तेजपुंज लघुबयस सुहावा॥
नि अलखित[1] गति वेष बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी॥

दो०—सजल नयन तन पुलकि, निज इष्टदेव पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनि तल[2], दसा न जाइ बखानि॥१११॥

म सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंक जनु पारस पावा॥
नहुँ प्रेम परमारथ दोऊ। मिलत धरें तन कह सब कोऊ॥
हुरि लषन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा॥
नि सिय-चरन धूरि धरि सीसा। जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा
न्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित लखि रामसनेही॥
पिअत नयनपुट[3] रूप पियूषा[4]। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा॥
पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे॥
म-लषन सिय रूप निहारी। होहिं सनेह बिकल नरनारी॥

दो०—तब रघुबीर अनेक बिधि, सखहि सिखावन दीन्ह।
रामरजायसु सीस धरि, भवन गवनु तेइ कीन्ह॥११२॥

नि सिय राम लषन कर जोरी। जमुनहिं कीन्ह प्रनामु बहोरी॥
ले ससीय मुदित दोउ भाई। रबितनुजा[5] कै करत बडाई॥
थिक अनेक मिलहिं मगु जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता॥
लषन सब अंग तुम्हारे। देखि सोचु अति हृदय हमारे॥
रग चलेहु पयादेहिं पाएँ। ज्योतिषु झूठ हमारेहि भाएँ॥
गमु पथ गिरि कानन भारी। तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी॥
रि केहरि[6] बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई॥

---

१ जो दिखाई न दे २ पृथ्वी पर ३ नेत्ररूप दोना भरके ४ अमृत
यमुनाजी ६ सिंह।

जाव जहाँ लगि तहँ पहुँचाई । फिरव बहोरि तुम्हहि सिरु नाई ॥

दो०—एहि विधि पूँछहिं प्रेम रस, पुलकगात जलु नैन ।
कृपासिन्धु फेरहि तिन्हहिं, कहि विनीत मृदु बैन ॥११॥

जे पुर गाँव बसहि मग माहीं । तिन्हहिं नाग-सुर-नगर सिहाहीं ॥
केहि सुकृती केहि घरी बसाए । धन्य पुन्यमय परम सुहाए ॥
जहँ जहँ रामचरन चलि जाहीं । तिन्ह समान अमरावति नाहीं ॥
पुन्यपुंज मग निकट-निवासी । तिन्हहिं सराहहिं सुर-पुर-बासी ॥
जे भरि नयन बिलोकहिं रामहिं । सीता-लषन-सहित घनस्यामहिं ॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं[१] । तिन्हहि देव-सर-सरित सराहहिं ॥
जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई । करहि कलपतरु तासु बड़ाई ॥
परसि राम पद-पदुम परागा । मानति भूमि भूरि निज भागा ॥

दो०—छाँह करहिं घन विबुधगन, बरषहिं सुमन सिहाहिं ।
देखत गिरि बन विहँग मृग, रामु चले मग जाहिं ॥१२॥

सीता-लषन-सहित रघुराई । गाँव निकट जब निकसहिं जाई ॥
सुनि सब बाल वृद्ध नर नारी । चलहि तुरत गृह-काज बिसारी ॥
राम लषन सिय-रूप निहारी । पाइ नयनफलु होहिं सुखारी ॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा । सब भए मगन देखि दोउ बीरा ॥
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी । लहि जनु रकन्हि सुर-मनि-ढेरी[२] ॥
एकन्हि एक बोलि सिख देही । लोचन-लाहु लेहु छन एही ॥
रामहि देखि एक अनुरागे । चितवत चले जाहि सग लागे ॥
एक नयनमग छबि उर आनी । होहिं सिथिल तन मन बरबानी ॥

दो०—एक देखि बटछाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात ।
कहहिं गवाँइअ[३] छिनुक श्रम, गवनब अबहि कि प्रात ॥१३॥

एक कलस भरि आनहिं पानी । अँचइअ[४] नाथ कहहिं मृदुबानी ॥

---

१ स्नान करते हैं २ कौस्तुभ-मणियों का ढेर ३ दूर कीजिये ४ आचमन कीजिये ।

नि प्रिय वचन प्रीति अति देखी। राम कृपालु सुसील बिसेखी ॥
ानी समित सीय मन माँहीं । घरिक बिलंबु कीन्ह बटछाँहीं ॥
देत नारिनर देखहि सोभा । रूप अनूप नयन मन लोभा ॥
टक सब सोहहिं चहुँ ओरा । रामचन्द्र मुख-चंद चकोरा ॥
न-तमाल-बरन तनु सोहा । देखत कोटि मदन-मनु मोहा ॥
मिनि-बरन[1] लषनु सुठि नीके। नखसिख सुभग भावते जी के ॥
निपट कटिन्ह कसे तूनीरा[2] । सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा ॥
दो०—जटा मुकुट सीसनि सुभग, उर भुज नयन बिसाल ।
सरद परब बिधु बदन[3] बर लसत स्वेद कन-जाल ॥११६॥
रनि न जाइ मनोहर जोरी । सोभा बहुत, थोरि मति मोरी ॥
म-लषन-सिय-सुन्दरताई । सब चितवहि चित मन मति लाई ॥
के नारि नर प्रेम पिआसे । मनहुँ मृगी मृग देखि दिआसे ।'
यसमीप ग्राम तिय जाहीं । पूँछत अतिसनेह सकुचाहीं ॥
र नार सब लागहिं पाएँ । कहहि वचन मृदु सरल सुभाएँ ॥
जकुमारि बिनय हम करहीं । तिय सुभाय कछु पूँछत डरहीं ॥
ामिनि अबिनय छमबि हमारी। बिलगु न मानव जानि गवाँरी ॥
जकुँअर दोउ सहज सलोने । इन्ह तें लहि दुति मरकत सोने ॥
दो०—स्यामल गौर किसोर बर, सुन्दर सुखमा अयन ।
सरद-सर्बरी-नाथ-मुख, सरद्सरोरुह नयन[6] ॥११७॥
ोटि मनोज लजावनिहारे[7] । सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ॥
नि सनेहमय मंजुल बानी । सकुची सिय, मन महँ मुसुकानी॥
नहिं बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी[8] ॥

१ बिजली का सा वर्ण २ तरकस ३ शरद् पूर्णमा के चन्द्र सदृश
सुन्दर बदन ४ ढीठता ५ सुन्दरता का घर ६ शरद ऋतु में फूले हुए कमल
समान सुन्दर नेत्र ७ करोड़ों कामदेवों को लज्जित करने वाले ८ सुन्दर
 वाली ।

सकुचि सप्रेम बाल मृग-नयनी। बोली मधुर वचन पिकबयनी[१]
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लपनु लघुदेवर मोरे
बहुरि बदनविधु अचल[२] ढाँकी। पियतन चितै भौंह करि बाँकी
खंजन[३] मंजु तिरीछे नैननि। निजपतिकहेउतिन्हहिंसियसैननि
भईं मुदित सब ग्रामबधूटीं। रँकन्ह रायरासि जनु लूटीं

दो०—अतिसप्रेम सिय पाँय परि, बहु विधि देहिं असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह, जबलगि महि अहिसीस॥

पारबतीसम पतिप्रिय होहू। देवि न हम पर छाँडब छोहू
पुनि पुनि विनय करिअ कर जोरा। जौं एहि मारग फिरिअ बहोरि
दरसनु देव जानि निज दासी। लखी सीय सब प्रेमपिआसी
मधुरवचन कहि कहि परतोषीं। जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषीं
तबहिं लपन रघुबररुख जानी। पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदुबानी
सुनत नारिनर भए दुखारी। पुलकित गात, बिलोचन बारि
मिटा मोद, मन भए मलीने। विधि निधि[४] दीन्हिलेत जनुछीने
समुझि करमगति धीरजु कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दी

दो०—लपन-जानकी-सहित तब, गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय वचन कहि, लिए लाइ मन साथ। ११

फिरत नारिनर अति पछिताहीं। दैवहि दोषु देहिं मन मा
सहित विषाद परस्पर कहहीं। बिधिकरतब उलटे सब अह
निपट निरंकुस[५] निठुर[६] निसंकू। जेहिंससि कीन्ह सरुज[११] सक
रूख कलपतरु, सागरु खारा। तेहि पठए बन राजकुम
जौं पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोगबिल
ए बिचरहिं मगु बिनु पदत्राना[१२]। रचे बादि विधि बाहन न

१ घायल की सी भाषा बोलने वाली २ वस्त्र ३ खञ्जन पक्षी के नेत्र ४ कृपा ५ प्रेम चाहने वाली ६ कोश, खजाना ७ खिल्कुल ९ (निष्ठुर) कठोर १० निडर ११ रोगी १२ जूता।

महि परहिं डासि कुसपाता । सुभग सेज[१] कत सृजत विधाता ॥
बर-बास इन्हहिं विधि दीन्हा । धवलधाम रचि रचि स्रमु कीन्हा ॥
दो०—जो ए मुनि पट-धरि[२] जटिल[३], सुन्दर सुठि सुकुमार ।
विविध भाँति भूषन बसन, बादि किए करतार ॥ १२० ॥
कन्द मूल फल खाहीं । बादि सुधादि असन[४] जग माँहीं ॥
कहहिं ए सहज सुहाए । आप प्रकट भए विधि न बनाए॥
लगि बेद कही विधि करनी । स्रवन नयन मन गोचर[५] बरनी ॥
बहु खोजि भुवन दसचारी । कहँ अस पुरुष, कहाँ अस नारी ॥
हहिं देखि विधि मनु अनुरागा । पटतर[६] जोग बनावइ लागा ॥
न्ह बहुत स्रम एक न आए । तेहि इरिषा[७] बन आनि दुराए ॥
कहहिं हम बहुत न जानहिं । आपुहिं परम धन्य करि मानहिं ॥
पुनि पुन्यपुंज हम लेखे । जे देखहिं, देखिहहिं[८] जिन्ह देखे ॥
दो०—एहि विधि कहि कहि बचन प्रिय, लेहिं नयन भरि नीर ॥
किमि चलिहहिं मारग अगम, सुठि सुकुमार सरीर ॥१२१॥
रि सनेह बिकल बस होहीं । चकई साँझ समय जनु सोहीं ॥
पद कमल कठिन मगु जानी । गहबरि हृदय[९] कहहिं बर बानी ॥
सत मृदुल चरन अरुनारे[१०] । सकुचति महि जिमि हृदय हमारे ॥
जगदीस इन्हहिं बनु दीन्हा । कस न सुमनमय मारगु कीन्हा ॥
माँगा पाइअ विधि पाहीं । ए रखिअहिं सखि आँखिन्ह माहीं ॥
नरनारि न अवसर आए । तिन्ह सिय रामु न देखन पाए ॥
नि सुरूप बूझहिं अकुलाई । अब लगि गए कहाँ लगि, भाई ॥
रथ धाइ बिलोकहिं जाई । प्रमुदित फिरहिं जनमफलु पाई ॥
दो०—अबला बालक वृद्धजन कर मीजहिं पछिताहिं ।
होहिं प्रेम बस लोग इमि, रामु जहाँ जहँ जाहिं । १२२॥

---

१ सुन्दर सेया २ मुनियों के समान वल्कधारी ३ जो जटा रखाये हों ४ भोजन ५ प्रत्यक्ष ६ बराबर का ७ जलन ८ देखेंगे ९ गद्गद् हृदय
… भरा ।

गाँउ गाँउ अस होइ अनन्दू । देखि भानु-कुल-कैरव-चदू
जे यह समाचार सुन पावहि । ते नृपरानिहिं दोषु लगावहिं
कहहिं एक अति भल नरनाहू । दीन्ह हमहि जेइ लोचनलाहू
कहहि परसपर लोग लोगाई । बातें सरल सनेह सुहाई
ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाए । धन्य सो नगर जहाँ ते आए
धन्य सो देसु सैलु[२] बन गाऊँ । जहँ जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊँ
सुख पायेउ विरंचि रचि तेही । ए जेहि के सब भाँति सनेही
राम-लखन-पथि[३] कथा सुहाई । रही सकल मग-कानन छाई

दो०—एहि विधि रघु-कुल-कमल-रवि, मग लोगन्ह सुख दे
जाहिं चले देखत बिपिन, सिय सौमित्र-समेत ॥

आगें रामु लखन बने पाछे । तापसबेष बिराजत काछे
उभय[४] बीच सिय सोहति कैसे । ब्रह्म-जीव-बिच माया जैसे
बहुरि कहौं छवि जसि मन बसई । जनु मधु-मदन-मध्य[५] रति ल
उपमा बहुर कहौं जिअ जोहा । जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सो
प्रभु-पद-रेख बीच बिच सीता । धरति चरन मग चलत सभी
सीय राम पद-अंक बराएँ । लखन चलहिं मगु दाहिन ब
राम-लखन-सिय प्रीति सुहाई । बचन अगोचर, किमि कहि
खग मृग मगन देखि छवि होहीं । लिए चोरि चित राम-बटोह

दो०—जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सियसमेत दोउ भ
भव-मगु-अगमु अनदु तेइ, बिनु स्रम रहे सिराइ ॥

अजहुँ जासु उर सपनेहु काऊ । बसहि लखन-सिय-राम बटा
राम-धाम-पथ[९] पाइहि सोई । जो पथ पाव कबहुँ मुनि

---

१ सूर्यकुल रूपा कुमोदिनी को चन्द्रमा के समान प्रसन्न कर
२ (शैल) पर्वत ३ राहगीर बटोही ४ दोनों ५ बसन्त और काम
बीच में ६ रास्तागीर ७ पार होगये ८ बटोही ९ स्वर्ग का रास्ता

तब रघुवीर स्रमित सिय जानी। देखि निकट बटु सीतल पानी॥
तहँ बसि कंद मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई॥
देखत बन सर सैल सुहाए। बालमीकि आस्रम प्रभु आए॥
राम दीख मुनिवास सुहावन। सुंदर गिरि काननु जलु पावन॥
सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुंजत मंजु मधुप[1] रस-भूले॥
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित[2] बैर मुदित मन चरहीं॥

दो०—सुचि सुंदर आस्रमु निरखि[3], हरषे राजिवनैन[4]।
सुनि रघुबर आगमनु, मुनि, आगे आयेउ लेन॥१२४॥

मुनि कहँ राम दंडवत[5] कीन्हा। आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने[6]। करि सनमानु आस्रमहिं आने॥
मुनिवर अतिथि प्रानप्रिय पाए। कंद मूल फल मधुर मगाए॥
सिय सौमित्रि राम फल खाए। तब मुनि आसन दिए सुहाए॥
बालमीकि मन आनँदु भारी। मंगलमूरति नयन निहारी॥
तब कर कमल-जोरि रघुराई। बोले बचन स्रवन-सुख दाई[7]॥
तुम्ह त्रिकाल-दरसी मुनि नाथा। बिस्व बदर[8] जिमि तुम्हरें हाथा॥
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी। जेहि जेहि भाँति दीन्ह बन रानी॥

दो०—तात-बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ।
मो कहँ दरस तुम्हार प्रभु, सबु मम पुन्य प्रभाउ॥१२६॥

देखि पाँय मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे॥
अब कहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेग[9] न पावै कोई॥
मुनि तापस[10] जिन्ह तें दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥
मंगल-मूल बिप्र परितोषू। दहै कोटि कुल भू-सुर-रोषू॥
अस जियजानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय-सौमित्रि-सहित जहँ जाऊँ॥

---

१ भौंरा २ बिना ३ देखकर ४ कमल के फूल के सदृश नेत्र वाले (बहु०) ५ प्रणाम ६ शीतल हुए ७ कानों को सुख देने वाले ८ बेर ९ कष्ट १० तपस्वी।

तहँ रचि रुचिर परन-तृन-साला[१] । बास करौं कछु काल कृपाला ॥
सहज सरल सुनि रघुबरबानी । साधु साधु बोले मुनि ग्यानी ॥
कस न कहहु अस रघु-कुल-केतू । तुम्ह पालक सन्तत स्रुतिसेतू[२] ॥
छं०—स्रुति-सेतु-पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी ।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की ॥
जो सहसमीसु अहीसु[३] महि-धरु लपनु स-चराचर धनी ।
सुरकाज धरि नरराज-तनु चले दलन[४] खल निसिचर-अनी[५] ॥
सो०—राम सरूप तुम्हार बचनअगोचर बुद्धि पर ।
अबगति[६] अकथ[७] अपार नेति नेति नित निगम कह ॥१२७॥
जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे । बिधि-हरि-संभु-नचावनिहारे ॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा । अउरु तुम्हहि को जाननिहारा ॥
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई । जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई ॥
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनंदन । जानहिं भगत भगत उर चंदन ॥
चिदानन्दमय[८] देह तुम्हारी । बिगतबिकार जान अधिकारी ॥
नरतनु धरहु सत-सुर-काजा । कहहु करहु जस प्राकृत राजा ॥
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे । जड मोहहिं बुध होहिं सुखारे ॥
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा । जस काछिअ तस चाहिअ नाँचा ॥
दो०—पूछेहु मोहि कि रहौं कहँ, मै पूछत सकुचाउँ ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहि दिखावौं ठाउँ ॥१२८॥
सुनि मुनि बचन प्रेमरस-साने । सकुचि राम मनमहुँ मुसुकाने ॥
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी । बानी मधुर अमिअरस बोरी ॥
सुनहु राम अब कहौं निकेता । जहाँ बसहु सिय-लपन-समेता ॥
जिन्ह के स्रवन समुद्र समाना । कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥

---

१ पत्ते और तिनकों का घर २ हमेशा वेद की मर्यादा पालने वाले हो ३ सहस्र हैं सिर जिसके ऐसा सर्पों का राजा ४ नष्ट करने को ५ दुष्ट निशाचरों की सेना ६ जो जाना न जाय ७ जो कहा न जाय ८ सर्वदा आनन्द म रहने वाला ।

भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे। तिन्हके हिय तुम्ह कहँ गृह रूरे[1]॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरसजलधर अभिलाषे[2]॥
निदरहिं सरित सिन्धु सर भारी। रूपबिंदु-जल होहिं[3] सुखारी॥
तिन्ह के हृदयसदन सुखदायक। बसहु बन्धु सिय सह रघुनायक॥

दो०—जस तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा[4] जासु।
मुकुताहल गुनगन चुनै राम बसहु हिय तासु॥१२९॥

प्रभु प्रसाद[5] सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहै नित नासा[6]॥
तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं। प्रभुप्रसाद पट भूषन धरहीं॥
सीस नवहिं सुर-गुरु द्विज देखी। प्रीतिसहित करि विनय विसेखी॥
कर नित करहिं रामपद पूजा। रामभरोस हृदय नहिं दूजा॥
मन्त्रराजु[7] नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा॥
तरपन होम करहिं विधि नाना। विप्र जिवाँइ देहिं बहु दाना॥
तुम्हतें अधिक गुरहिं जिय जानी। सकल भाव सेवहिं सनमानी॥

दोहा—सबु करि माँगहि एक फलु राम चरन रति होउ।
तिन्हके मनमन्दिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोउ॥१३०॥

काम क्रोध मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह के कपट दम्भ नहिं माया। तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया॥
सब के प्रिय सबके हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्यप्रिय बचन विचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहि छाँडि गति दूसर नाहीं। राम बसहु तिन्हके मन माहीं॥
जननीसम जानहिं परनारी। धनु पराव विषतें विष भारी॥
जे हरषहिं परसम्पति देखी। दुखित होहिं परविपति विसेखी॥

---

१ उत्तम २ दर्शन रूप बादल की आशा ३ सुन्दरता रूपी जल की बूँद ४ जीभ (जिह्वा) ५ आपकी कृपा ६ नाक ७ महामन्त्र

जिन्हहि राम तुम प्रान पियारे। तिन्ह के मन सुभसदन तुम्हारे॥
दोहा—स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्हके सब तुम्ह तात।
मनमंदिर तिन्हके बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात॥१३१॥
अवगुन तजि सबके गुन गहहीं। बिप्र-धेनु-हित संकट[1] सहहीं॥
नीतिनिपुन जिन्हकइ जग लीका[2]। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका॥
गुन तुम्हार समुझै निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥
जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन-सुखदाई[3]॥
सब तजि तुम्हहिं रहै लउ लाई। तेहि के हृदय रहहु रघुराई॥
सरगु नरकु अपबरगु[4] समाना। जहँ तहँ देख धरे धनुबाना॥
करम-बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा॥
दोहा—जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥१३२॥
एहि बिधि मुनिवर भवन देखाए। बचन सप्रेम राममन भाए॥
कह मुनि सुनहु भानु-कुल-नायक। आस्रमु कहौं समय-सुखदायक॥
चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू[5]॥
सैलु-सुहावन[6] कानन चारू। करि-केहरि-मृगविहँग बिहारू[7]॥
नदी पुनीत[8] पुरान बखानी। अत्रिप्रिया* निज-तप बल-आनी॥
सुरसरिधार नाउँ मन्दाकिनि। जो सब-पातक-पोतक-डाकिनि॥
अत्रि आदि मुनि-बर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं॥
चलहु सफल स्रम[9] सब कर करहू। राम देहु गौरव[10] गिरि बरहू॥

१ कष्ट २ गणना ३ सुख देने वाला घर ४ मोक्ष ५ आराम, सुभीता ६ सुन्दर पर्वत, ७ विहार करते हैं, विचरते हैं ८ पवित्र ९ मेहनत १० बड़ाई।

* महर्षि अत्रि की पतिव्रता स्त्री अनुसूआ (दक्ष की पुत्री) तप के प्रभाव से गंगाजी की धार मंदाकिनी को वृद्ध पति के स्नानार्थ यहाँ लाईं कि उनको कष्ट न हो।

दो०—चित्र-कूट-महिमा अमित कही महामुनि गाइ।
आइ नहाए सरित वर सिय समेत दोउ भाइ ॥१३३॥

रघुबर कहेउ लषन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू[1] ॥
लषनु दीख पय[2] उत्तर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा[3] ॥
*नन्दी पनच[4] सर सम दम[5] दाना। सकल कलुष कलि साउज[6] नाना ॥
चित्रकूट जनु अचल[7] अहेरी[8]। चुकै न घात मार मुठभेरी[9] ॥
अस कहि लषन ठाँव देखरावा। थल बिलोकि रघुबर सुख पावा ॥
रमेउ[10] राममनु देवन्ह जाना। चले सहित सुरपति परधाना ॥
कोल किरात-बेष सब आये। रचे परन-तृन-सदन-सुहाए ॥
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला ॥

दो०—लषन-जानकी-सहित प्रभु, राजत रुचिर निकेत[11]।
सोह मदन[12] मुनिबेष जनु, रति रितुराज-समेत[13] ॥१३४॥

अमर नाग किन्नर दिसि-पाला। चित्रकूट आए तेहि काला ॥
राम प्रनामु कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचन लाहू ॥
बरषि सुमन कह देव-समाजू। नाथ सनाथ भए हम आजू ॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाए। हरषित निज निज सदन सिधाए ॥
चित्रकूट रघुनन्दनु छाए[14]। समाचार सुनि सुनि मुनि आए ॥
आवत देखि मुदित मुनिबृन्दा। कीन्ह दण्डवत रघु-कुल-चन्दा[15] ॥
मुनि रघुबरहिं लाइ उर लेहीं। सुफल[16] होन हित आसिष देहीं ॥

१ ठहरने का प्रबन्ध २ जल ३ पयस्विनी ४ प्रत्यंचा ५ ममता, इन्द्रियों का जीतना ६ कलियुग के पाप निशाना हैं ७ अटल ८ शिकारी ९ नजदीक से १० मन लग जाना ११ सुन्दर घर १२ कामदेव १३ रति और वसन्त ऋतु सहित १४ बसे हैं १५ रघुकुल में श्रेष्ठ १६ अपना वचन सत्य होने को।

* नदी, उस धनुषरूपी नाले (पयस्विनी नदी) की प्रत्यंचा रूप है, शम, दम, दान बाण हैं, भांति भांति के कलियुग के सम्पूर्ण पाप लक्ष्य हैं।

सिय-सोमित्रि-राम छवि देखहिं । साधन[1] सकल सफल कर लेखहिं ॥

दो०—जथाजोग सनमानि प्रभु, बिदा किए मुनिवृंद[2] ।
करहिं जोग जग जाग[3] तप, निज आस्रमनि सुछंद[4] ॥१३५॥

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई । हरषे जनु नवनिधि घर आई ॥
कंद मूल फल भरि भरि दोना । चले रंक जनु लूटन सोना ॥
तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता । अपर तिन्हहिं पूछहिं मगु जाता ॥
कहत सुनत रघुबीर-निकाई[5] । आइ सबन्हि देखे रघुराई ॥
करहिं जोहारु भेंट धरि आगे । प्रभुहिं बिलोकहि अति अनुरागे ॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढे । पुलक सरीर, नयन जल बाढे ॥
राम सनेह-मगन सब जाने । कहि प्रिय बचन सकल सनमाने ॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी । बचन बिनीत कहहिं कर जोरी ॥

दो०—अब हम नाथ सनाथ सब, भए देखि प्रभुपाय ।
भाग हमारे आगमनु, राउर कोसलराय ॥ १३६॥

धन्य भूमि बन पथ पहारा । जहँ जहँ नाथ पाउ तुम धारा ॥
धन्य बिहँग[6] मृग काननचारी । सफल जनम भए तुम्हहिं निहारी ॥
हम सब धन्य सहित परिवारा । दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा ॥
कीन्ह बासु भल ठाउँ बिचारी । इहाँ सकल रितु रहब सुखारी ॥
हम सब भाँति करबि सेवकाई । करि केहरि अहि बाघ बराई[8] ॥
बन बेहड गिरि कंदर खोहा । सब हमार प्रभु पग पग जोहा[9] ॥
जहँ तहँ तुमहि अहेर[10] खेलाउब । सर निरझर[11] भल ठाउँ देखाउब ॥
हम सेवक परिवार समेता । नाथ न सकुचब आयसु देता ॥

दो०—बेदबचन-मुनिमन-अगम, तें प्रभु करुनाअयन ।
बचन किरातन्ह के सुनत, जिमि पितु बालक-बयन ॥१३७॥

---

१ उपाय २ मुनियों का समूह ३ जग्न (यज्ञ) ४ निरकुश ५ सुन्दरता ६ पक्षी ७ ... ८ बचाकर ९ देखा हुआ १० शिकार ११ झरना

रामहिं केवल प्रेमु पियारा। जानिलेउ जो जाननिहारा॥
राम सकल वन चर[1] तब तोषे[2]। कहि मृदु वचन प्रेम परितोषे॥
बिदा किए सिरु नाइ सिधाए। प्रभुगुन कहत सुनत घर आए॥
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई। बसहिं बिपिन-सुर-मुनि सुखदाई॥
जब तें आइ रहे रघुनायकु। तब ते भयउ बनु मंगल दायकु[3]॥
फूलहिं फलहिं बिटप[4] बिधि नाना। मंजु-वलित-बर-बेलि बिताना॥
सुर-तरु-सरिस सुभाय सुहाए। मनहुँ बिबुध बन[6] परिहरि आए॥
गुंज मंजुतर मधुकर[7] स्रेनी[8]। त्रिबिध बयारि बहै सुखदेनी॥

दो०—नीलकंठ कलकंठ[9] सुक, चातक चक्र चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहँग, स्रवनसुखद चितचोर॥१३८॥

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगत बैर[10] बिचरहिं सब संगा॥
फिरत अहेर रामछबि देखी। होहिं मुदित मृगबृंद बिसेखी॥
बिबुधबिपिन जहँ लगि जग माहीं। देखि रामबनु सकल सिहाहीं॥
सुरसरि सरसइ दिनकर-कन्या। मेकलसुता[11] गोदावरि धन्या॥
सब सर सिंधु नदी नद नाना। मंदाकिनि कर करहिं बखाना॥
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू। मंदर मेरु सकल-सुर बासू॥
सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहिं तेते॥
बिंधि[12] मुदित मन सुख न समाई। स्रम बिनु बिपुल[13] बड़ाई पाई॥

दो०—चित्रकूट के बिहँग मृग, बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्यपुंज सब धन्य अस, कहहिं देव दिन राति॥१३९॥

नयनवंत रघुबरहिं बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी[14]॥
परसि चरनरज अचर[15] सुखारी। भए परमपद[16] के अधिकारी॥

---

१ बनवासी २ संतुष्ट किया ३ मंगल देने वाले ४ वृक्ष ५ बेलों के चन्दोवे ६ देवताओं के वन ७ भौंरा ८ पाँति ९ कोयल १० प्रेम से ११ नर्मदा १२ बिन्ध्याचल पर्वत १३ बहुत १४ शोक रहित १५ स्थावर १६ मोक्ष।

सो बनु-सैल सुभाय सुहावन । मंगलमय अति-पावन पावन[1]॥
महिमा कहिअ कवनिविधि तासू । सुखसागर[2] जहँ कीन्ह निवासू॥
*पयपयोधि तजि अवध बिहाई । जहँ सिय-लखनु-राम रहे आई॥
कहि न सकहि सुषमा[3] जसकानन। जौ सत सहस होहि सहसानन[4]॥
सो मैं बरनि कहौं बिधि केही । डाबरकमठ[5] कि मंदर लेही॥
सेवहि लखनु करम-मन-बानी । जाइ न सीलु सनेह बखानी॥

दो०—छिनु छिनु लखि सिय-राम- पद, जानि आपु पर नेह ।
करत न सपनेहुँ लखनु चितु, बधु-मातु-पितु-गेहु ॥१४०॥

रामसंग सिय रहति सुखारी । पुर-परिजन-गृह-सुरति[6] बिसारी[7]॥
छिनु छिनु पिय-बिधु-बदनु निहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी॥
नाह-नेहु[8] नित बढत बिलोकी । हरषित रहति दिवस जिमि कोकी॥
सियमनु रामचरन अनुरागा । अवध सहस सम बन प्रियलागा॥
परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा । प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा॥
सासु-ससुर मम मुनितिय मुनिवर । असन अमिय सम कंदमूल फर॥
नाथ साथ साथरी सुहाई । मयन सयन-सत सम[9] सुखदाई॥
लोकप[10] होहि बिलोकत जासू । तेहि कि मोहिं सक बिषय-बिलासू॥

दो०—सुमिरत रामहि तजहिं जन, तृन सम बिषय बिलासु ।
रामप्रिया जग-जननि सिय, कछु न आचरजु तासु॥१४१॥

सीय लखनु जेहि बिधि सुखु लहहीं। सोइ रघुनाथ करहि सोइ कहहीं॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी । सुनहिं लखनु सिय अतिसुखु मानी॥

---

१ अत्यन्त पवित्रसे भी पवित्र २ सुखके समुद्र ३ सुन्दरता ४ हजा[र]
हैं मुख जिसके (शेषनाग) ५ पोखर का कछुआ ६ स्मृति ७ छोड़[कर]
८ पति प्रेम ९ सैकड़ों कामदेव के सदृश १० दिग्पाल ।

* प्रलयकाल में भगवान् क्षीर सागर मे शेष जी की शैया पर श[यन]
करते हैं, लक्ष्मी पैर दाबा करती है । अत्याचार के समय क्षीर साग[र]
छोड़ जन्म लेकर पृथ्वी का भार उतारते है ।

।ˎ मातु पितु परिजन भाई। भरत-सनेहु-सीलु-सेवकाई ॥
सिंधु प्रभु होहिं दुखारी। धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी ॥
।सियलषनु बिकल होइ जाहीं। जिमि पुरुषहिं अनुसर[१] परिछाहीं ॥
।मधु-गति लखि रघुनंदनु। धीर कृपाल भगत-उर-चंदनु[२] ॥
कहन कछु कथा पुनीता[३]। सुनि सुखु लहहिं लषनु अरु सीता ॥

दो०—राम-लषन-सीता-सहित सोहत परन निकेत।
जिमि बासव[४] बस अमरपुर सची जयंत समेत ॥१४२॥

गवहिं प्रभु सिय लषनहिं कैसें। पलक बिलोचन गोलक जैसें ॥
रहिं लषन सीय रघुबीरहि। जिमि अबिबेकी[५] पुरुष सरीरहि ॥
है बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग-मृग-सुर-तापस हितकारी ॥
हेउँ राम-बन-गवनु सुहावा। सुनहु सुमंत्र अवध जिमि आवा ॥
रेउ निषादु प्रभुहि पहुँचाई। सचिव सहित रथ देखेसि आई ॥
त्री बिकल बिलोकि निषादू। कहि न जाइ जस भयेउ बिषादू ॥
राम राम सिय लखन पुकारी। परेउ धरनितल ब्याकुल भारी ॥
निरखि दखिन दिसि[६] हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहँग अकुलाहीं ॥

दो०—नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन बारि।
ब्याकुल भयेउ निषाद मन रघु-बर-बाजि निहारि ॥१४३॥

रि धीरजु तब कहै निषादू। अब सुमंत्र परिहरहु बिषादू ॥
ह पंडित परमारथ ग्याता[७]। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता[८] ॥
बिबिध कथा कहि कहि मृदु बानी। रथ बैठारेउ बरबस आनी ॥
सिथिल रथु सकै न हाँकी। रघु बर-बिरह-पीर उर बाँकी[९] ॥
फराहिं मग चलहिं न घोरे। बनमृग[१०] मनहुँ आनि रथ जोरे ॥

---

१ अनुगमन करती है, पीछे पीछे चलती है २ भक्तों के हृदय को ...दन रूप ३ पवित्र ४ इन्द्र ५ अज्ञानी ६ दक्षिण दिशा ७ ज्ञानतत्त्व का जानने वाला ८ उल्टा दैव ९ बड़ी भारी १० जंगली हिरन।

अड़ुकि[१] परहिं फिरि हेरहिं पीछे । रामवियोग विकल दुख तीछे[२] ॥
जो कह रामु लषनु वैदेही । हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही ॥
बाजि विरह गति कहि किमि जाती । बिनु मनि फनिक[३] विकल जेहि भाँती ॥

दो०—भयेउ निषादु विषादवस, देखत सचिव-तुरग[४] ।
बोलि सुसेवक चारि तब, दिए सारथी संग ॥१४४॥

गुह सारथिहि फिरे पहुँचाई । विरह विषाद बरनि नहि जाई ॥
चले अवध लेइ रथहि निषादा । होहि छनहिं छन मगन विषादा[५] ॥
सोच सुमन्त्र विकल दुखदीना । धिग जीवन रघु-बीर विहीना ॥
रहिहि न अंतहु अधमु[६] सरीरू । जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू ॥
भए अजस-अघ-भाजन[७] प्राना । कवन हेतु नहि करत पयाना[८] ॥
अहह मंद मनु अवसर चूका । अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका ॥
मींजि हाथ सिरु धुनि पछिताई । मनहुँ कृपिन[९] धनरासि गवाँई[१०] ॥
विरद बाँधि बर बीरु कहाई । चलेउ समर जनु सुभट पराई ॥

दो०—विप्र विवेकी वेदविद[११] संमत साधु सुजाति ।
जिमि धोखे मदपान कर सचिव सोच तेहि भाँति ॥१४५॥

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी । पतिदेवता[१२] करम मन बानी ॥
रहै करमबस परिहरि नाहू[१३] । सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू ॥
लोचन सजल, डीठि[१४] भइ थोरी । सुनै न स्रवन विकल मति भोरी ॥
सूखहिं अधर लागि मुँह लाटी[१५] । जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी[१६] ॥
बिबरन भयेउ न जाय निहारी । मारेसि मनहुँ पिता महतारी ॥

---

१ अड़ जाते हैं २ तीक्ष्ण ३ साँप ४ मन्त्री और घोड़े ५ शोक से डूबे हुए ६ नीच ७ बुराई और पापों से भरे हुए पात्र ८ कूच ९ लोभी १० खोकर ११ वेद का ज्ञाता १२ पति ही जिसका देवता हो १३ स्वामी १४ दृष्टि १५ मुँह सूख जाना या चिपकना १६ सीमारूप किवाड़ होने से अर्थात् १४ वर्ष तक ।

हानि गलानि विपुल मन व्यापी। जम-पुर-पथ सोच जिमि पापी॥
बचन न आव हृदय पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई॥
रामरहित रथ देखिहि जोई। सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई॥

दोहा—धाइ पूँछिहहिं मोहि जब विकल नगर नरनारि।
उतरु देब मैं सबहि तब, हृदय बज्र बैठारि॥१४६॥

पुँछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिन्हहिं विधाता॥
पूँछिहि जबहिं लषन महतारी। कहिहउँ कवन सँदेस सुखारी॥
रामजननि जब आइहि धाई। सुमिरि बच्छु[1] जिमि धेनुलवाई[2]॥
पूँछत उतर देब मैं तेही। गे बनु राम लषनु बैदेही॥
जोइ पूँछिहि तेहि उतरु देबा। जाइ अवध अब एहु सुखलेबा॥
पुँछिहहि जबहिं राउ दुख दीना। जिवनु जासु रघुनाथ अधीना॥
देहौं उतरु कवनु मुँहु लाई। आयेउँ कुसल कुअँर पहुँचाई॥
सुनत लषन सिय-राम सँदेसू। तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू॥

दोहा—हृदउ न बिदरेउ पंक[3] जिमि बिछुरत प्रीतम-नीर।
जानत हौं मोहि दीन्ह विधि यहु जातना सरीर[4]॥१४७॥

एहि बिधि करत पंथ पछितावा। तमसा-तीर तुरत रथु आवा॥
बिदा किए करि बिनय निषादा। फिरे पाँय परि विकल-विषादा॥
पैठत नगर सचिव सकुचाई। जनु मारेसि गुरु-बाम्हन-गाई॥
बैठि बिटपतर दिवसु गवाँवा। साँझ समय तब अवसरु पावा॥
अवधप्रवेसु कीन्ह अँधियारे। पैठ भवन रथु राखि दुआरे॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाए। भूपद्वार रथु देखन आए॥
रथु पहिचानि बिकल लखि घोरे। गरहिं गात जिमि आतप[5] ओरे[7]॥
नगर-नारि नर व्याकुल कैसे। निघटत[8] नीर मीनगन जैसे॥

---

१ (वत्स) बछड़ा २ नई बिआई हुई गाय ३ कीचड़ ४ यह शरीर यम दण्ड सहने को ५ धुसते समय ६ गर्मी ७ ओले ८ खतम होने पर।

अरुकि[१] परहि फिरि हेरहिं पीछे । रामवियोग विकल दुख तीछे[२] ॥
जो कह रामु लषनु बैदेही । हिंकरि हिंकरि हित हेरहि तेही ॥
बाजि बिरह गति कहि किमि जाती । बिनुमनिफनिक[३] विकल जेहिभाँती ॥

दो०—भयेउ निषादु बिषादवस, देखत सचिव तुरग[४] ।
चोलि सुसेवक चारि तब, दिए सारथी संग ॥१४४॥

गुह सारथिहि फिरे पहुँचाई । बिरह बिषाद बरनि नहिं जाई ॥
चले अवध लेइ रथहि निषादा । होहिं छनहिं छन मगन बिषादा ॥
सोच सुमंत्र बिकल दुखदीना । धिग जीवन रघु-बीर बिहीना ॥
रहिहि न अंतहु अधमु[५] सरीरू । जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू ॥
भए अजस-अघ-भाजन[७] प्राना । कवन हेतु नहिं करत पयाना[८] ॥
अहह मंद मनु अवसर चूका । अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका ॥
मीजि हाथ सिरु धुनि पछिताई । मनहुँ कृपिन[९] धनरासि गवाँई[१०] ॥
बिरद बाँधि बर बीरु कहाई । चलेउ समर जनु सुभट पराई ॥

दो०—बिप्र बिबेकी बेदबिद[११], संमत साधु सुजाति ।
जिमि धोखे मदपान कर, सचिव सोच तेहि भाँति ॥१४५॥

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी । पतिदेवता[१२] करम मन बानी ॥
रहै करमबस परिहरि नाहू[१३] । सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू ॥
लोचन सजल, डीठि[१४] भइ थोरी । सुनै न स्रवन बिकल मति भोरी ॥
सूखहिं अधर लागि मुँह लाटी[१५] । जिउ न जाइ उर अवधिकपाटी[१६] ॥
बिबरन भयेउ न जाय निहारी । मारेसि मनहुँ पिता महतारी ॥

१ अड जाते हैं २ तीक्ष्ण ३ साँप ४ मंत्री और घोड़े ५ शोक से डूबे हुए ६ नीच ७ बुराई और पापों से भरे हुए पात्र ८ कूच ९ लोभी १० खोकर ११ वेद का ज्ञाता १२ पति ही जिसका देवता हो १३ स्वामी १४ दृष्टि १५ मुँह सूख जाना या चिपकना १६ सीमारूप किवाड़ होने से अर्थात् १४ वर्ष तक ।

हानि गलानि बिपुल मन व्यापी । जम-पुर-पथ सोच जिमि पापी ॥
बचन न आव हृदय पछिताई । अवध काह मैं देखब जाई ॥
रामरहित रथ देखिहि जोई । सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई ॥

दोहा—धाइ पूँछिहहिं मोहि जब, बिकल नगर नरनारि ।
उतरु देब मैं सबहि तब, हृदय बज्रु बैठारि ॥१४६॥

पुँछिहहिं दीन दुखित सब माता । कहब काह मैं तिन्हहि बिधाता ॥
पूँछिहि जबहिं लषन-महतारी । कहिहउँ कवन सँदेस सुखारी ॥
रामजननि जब आइहि धाई । सुमिरि बच्छु[1] जिमि धेनुलवाई[2] ॥
पूँछत उतर देब मैं तेही । गे बनु राम लषनु बैदेही ॥
जोइ पूँछिहि तेहि ऊतरु देबा । जाइ अवध अब एहु सुखलेबा ॥
पुँछिहहि जबहिं राउ दुख दीना । जिवनु जासु रघुनाथ अधीना ॥
देहौं उतरु कवनु मुँहु लाई । आयेउँ कुसल कुअँर पहुँचाई ॥
सुनत लषन सिय राम सँदेसू । तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू ॥

दोहा—हृदउ न बिदरेउ पंक[3] जिमि बिछुरत प्रीतमु नीर ।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यहु जातना सरीर[4] ॥१४७॥

एहि बिधि करत पंथ पछितावा । तमसा तीर तुरत रथु आवा ॥
बिदा किए करि बिनय निषादा । फिरे पाँय परि बिकल-बिषादा ॥
पैठत नगर सचिव सकुचाई । जनु मारेसि गुरु-बाम्हन गाई ॥
बैठि बिटपतर दिवसु गवाँवा । साँझ समयतब अवसरु पावा ॥
अवधप्रवेसु कीन्ह अँधियारे । पैठ भवन रथु राखि दुआरे ॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाए । भूपद्वार रथु देखन आए ॥
रथु पहिचानि बिकल लखि घोरे । गरहिं गात जिमि आतप[6] ओरे[7] ॥
नगर नारि-नर ब्याकुल कैसे । निघटत[8] नीर मीनगन जैसे ॥

---

१ (वत्स) बछड़ा २ नई बिआई हुई गाय ३ कीचड़ ४ यह शरीर यम दण्ड सहने को ५ घुसते समय ६ गर्मी ७ ओले ८ खतम होने पर ।

दोहा—सचिव आगमनु सुनत सबु, बिकल भयेउ रनिवासु ।
भवनु भयकरु लाग तेहि मानहुँ प्रेतनिवासु[1] ॥१४८॥

अति आरत सब पूँछहिं रानी । उतरु न आव विकल भइ बानी ॥
सुनै न स्रवन नयन नहिं सूझा । कहहु कहाँ नृप जेहि तेहि बूझा ॥
दासिन्ह दीख सचिव-बिकलाई । कौसिल्या-गृह गईं लेवाई ॥
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा । अमियरहित जनु चदु बिराजा ॥
आसन-सयन-बिभूषन-हीना । परेउ भूमि तल निपटमलीना ।
लेइ उसास सोच एहि भाँती । सुरपुरतें जनु खँसेउ जजाती* ।
लेत सोचभरि छिन छिन छाती । जनु जरि पख परेउ सपाती† ।
राम राम कह रामसनेही । पुनि कह राम लपन बैदेही ।

दो०—देखि सचिव जयजीव कहि, कीन्हेउ दड प्रनामु ।
सुनत उठेउ व्याकुल नृपति कहु सुमंत्र कहँ रामु ॥१४९॥

भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई । बूडत कछु अधार जनु पाई ।
सहित सनेह निकट बैठारी । पूछत राउ नयन भरि बारी ॥
रामकुसल कहु सखा सनेही । कह रघुनाथ लखनु बैदेही ॥
आने फेरु कि बनहिं सिधाए । सुनत सचिव लोचन जल छाए ॥
सोच विकल पुनि पूँछ नरेसू । कहु सिय-राम-लपन-सदेसू[3] ॥

---

१ भूतों का घर २ गिर गया ३ हाल ।

* राजा नहुष का पुत्र राजा ययाति धर्म बल से स्वर्ग प्राप्त करचुका था । इन्द्र ने इसको गद्दी पर बैठा कर सारे सत्कार्य इसी के मुँह से कहला लिये । अपनी प्रशंसा स्वय करने से पुण्य कम हो गया, तब तो इन्द्र ने इनको स्वर्ग मे गिरा दिया ।

† कश्यप के पुत्र अरुण के सम्पाती और जटायु दो पुत्र थे इन्होंने बलाभिमान मे सूर्य के निकट जाने की प्रतिज्ञा की, जब सूर्य की किरणों से पर जलने लगे तब जटायु तो लौट आया परन्तु सम्पाती न लौटा, उसके पर जल गये और व्याकुल होकर महेन्द्र पर्वत पर गिर गया ।

राम-रूप-गुन-सील-सुभाऊ । सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥
राउ सुनाइ दीन्ह बनवासू । सुनि मन भयेउ न हरष हरासू[१]॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राना । को पापी बड़ मोहि समाना॥

दो०—सखा रामु सिय लषनु जहँ, तहाँ मोहि पहुँचाउ।
नाहिं त चाहत चलन[२] अब, प्रान कहौं सतिभाउ॥१५०॥

पुनि पुनि पूँछत मंत्रिहि राऊ। प्रियतम सुअन सँदेस सुनाऊ॥
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ। रामु लषन सिय नयन देखाऊ॥
सचिव धीर धरि कह मृदुबानी। महाराज तुम पंडित ग्यानी॥
बीर सुधीर धुरंधर देवा। साधु-समाज सदा तुम्ह सेवा॥
जनम मरन सब दुख-सुख भोगा। हानि लाभ, प्रियमिलन बियोगा॥
काल करम बस होहि गोसाईं। बरबस[३] राति दिवस की नाईं॥
सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ[४] सम धीर धरहि मन माहीं॥
धीरज धरहु बिबेक बिचारी। छाँड़िय सोचु सकल हितकारी॥

दो०—प्रथम बास तमसा भयेउ, दूसर सुरसरि तीर।
न्हाइ रहे जलपान करि, सिय समेत दोउ बीर॥१५१॥

केवट कीन्हि बहुत सेवकाई। सो जामिनि सिंगरौर गवाँई॥
होत प्रात बटछीर[५] मँगावा। जटामुकुट निज सीस बनावा॥
रामसखा तब नाव मँगाई। प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई॥
लषन बानधनु धरे बनाई। आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई॥
बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा। बोले मधुर बचन धरि धीरा॥
तातु प्रनामु तात सन कहेहू। बार बार पद पंकज गहेहू॥
करबि पायँ परि बिनय बहोरी। तात करिअ जनि चिंता मोरी॥
बनमग मंगल[६] कुसल हमारें। कृपा अनुग्रह[७] पुन्य तुम्हारें॥

---

१ दुःख, शोक २ प्राण चलना चाहते हैं अर्थात् मैं मरने वाला हूँ, ३ अनिवार्य ४ सुख और दुःख ५ बरगद का दूध ६ सुखदायक ७ कृपा।

छंद—तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुख पाइहौं।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पायँ पुनि फिरि आइहौं॥
जननी सकल परितोष परि परि पायँ करि बिनती घनी।
तुलसी करहु सोइ जतन जेहि कुसली[१] रहहिं कोसलधनी॥

सो०—गुरु सन कहब सँदेस, बार बार पद-पदुम गहि।
करब सोइ उपदेस, जेहि न सोच मोहि अवधपति॥१५२॥

पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनायेउ बिनती मोरी॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जाते रह नर-नाह सुखारी॥
कहब सँदेसु भरत के आए। नीति न तजिअ राजपद पाए॥
पालेहु प्रजहि करम-मन बानी। सेयेहु मातु सकल सम जानी॥
अउर निबाहेहु भायप[२] भाई। करि पितु-मातु सुजन सेवकाई॥
तात भाँति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहिं करइ न काऊ॥
लखन कहे कछु बचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा॥
बार बार निज सपथ दिवाई। कहबि न तात लखनलरिकाई॥

दो०—कहि प्रनामु कछु कहन लिय सिय भइ सिथिल सनेह।
थकित बचन लोचन सजल पुलक[३] पल्लवित देह॥१५३॥

तेहि अवसर रघुबर रुख पाई। केवट पारहि नाव चलाई॥
रघु कुल तिलक चले एहि भाँती। देखेउँ ठाढ कुलिस धरि छाती[४]॥
मैं आपनु किमि कहौं कलेसू। जिअत फिरेउँ लेइ रामसँदेसू॥
अस कहि सचिव बचन रहि गयेऊ। हानि गलानि सोच बस भयेऊ॥
सूत-बचन सुनतहि नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुनदाहू॥
तलफत बिषम मोह मन मापा[५]। माँजा मनहुँ मीन कहुँ ब्यापा॥
करि बिलाप सब रोवहिं रानी। महा बिपति किमि, जाइ बखानी॥
सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा। धीरजहू कर धीरजु भागा॥

---

१ प्रसन्न २ भ्रातृस्नेह ३ पुलकायमान ४ छाती कड़ी करके ५ व्याप्त होगया

दो०—भयेउ कोलाहल अवध अति, सुनि नृप राउर सोर ।
निपुल विहँग वन[1] परेउ निसि, मानहुँ कुलिस कठोर ॥१५४॥

प्रान कठगत[2] भयेउ भुआलू । मनिविहीन जनु व्याकुल व्यालू ॥
इन्द्री सकल विकल भइं भारी । जनु सर सरसिज वनु बिनुबारी ॥
कौसिल्या नृपु दीख मलाना । रवि कुल रवि अथएउ[3] जिअ जाना ।
उर धरि धीर राम महतारी । बोली बचन समय अनुसारी ॥
नाथ समुझि मन करिअ बिचारू । राम वियोग-पयोधि अपारू ॥
करनधार[4] तुम्ह अवध जहाजू । चढेउ सकल प्रिय पथिक समाजू ।
धीरजु धरिअ त पाइअ पारू । नाहिं त बूडिहि सबु परिवारू ॥
जों जिअ धरिअ विनय पिय मोरी । रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी ॥

सो०—प्रिया बचन मृदु सुनत नृप, चितयेउ आंखि उघारि ।
तलफत मीन मलीन जनु, सींचेउ सीतल बारि ॥१५५॥

धरि धीरजु उठि बैठि भुआलू । कहु सुमंत्र कहँ राम कृपालू ।
कहाँ लखन कहँ रामु सनेही । कहँ प्रिय पुत्र बधू बैदेही ।
बिलपत राउ बिकल बहु भाँती । भइ जुगसरिस सिराति न राती ॥
तापस अंध साप सुधि आई । कौसल्यहि सब कथा सुनाई* ॥
भयेउ विकल बरनत इतिहासा । रामरहित धिग जीवनआसा ॥

---

१ पक्षियों से भरे हुए वन में २ प्राण कण्ठ में आगये हैं ३ सूर्यकुल का सूर्य छिपने वाला है ४ मल्लाह ।

* राजा ने कहा जब मैं धनुर्विद्या में प्रवीण हो चुका था, मृगया पर हाथियों के शिकार को गया । मैंने शब्द सुनकर बाण चलाया वह श्रवण के जो अपने अंधे मा बाप के लिये पानी भरने आया था, लगा । मैं जैसे ही बाण निकाला वह मर गया । मैं पानी लेकर उसके मा बाप के पास आया । उन्होंने यह जानकर कि उनका पुत्र मेरे द्वारा मारा गया है यह शाप दिया 'हमारी तरह तू भी पुत्र शोक में मरेगा' ।

सो तनु राखि करवि मैं काहा। जेहि न प्रेम-पनु मोर निबाहा॥
हा रघुनन्दन प्रानपिरीते। तुम्ह बिनु जियत बहुत दिन बीते॥
हा जानकी लखन, हा रघुबर। हा पितु हित-चित-चातक-जलधर†॥

दो०—राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि[1] रघुबरबिरह, राउ गए सुरधाम॥१५६॥

जिअन-मरन फलु दसरथ पावा। अंड[2] अनेक अमल जसु छावा॥
जिअत राम बिधु-बदनु निहारा। रामबिरह करि मरनु सँवारा॥
सोकबिकल सब रोवहि रानी। रूपु सील बलु तेज बखानी॥
करहि बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमि तल बारहि बारा॥
बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदन[3] करहिं पुरबासी॥
अथएउ आजु भानु कुल भानू। धरमअवधि गुन रूप निधानू॥
गारी सकल कैकइहि देहीं। नयनबिहीन[4] कीन्ह जग जेहीं॥
एहि बिधि बिलपत रैनि[5] बिहानी। आए सकल महामुनि ग्यानी॥

दो०—तब बसिष्ठ मुनि समयसम, कहि अनेक इतिहास।
सोक निवारेउ[6] सबहि कर, निज बिग्यान-प्रकास॥१५७॥

तेल नाव भरि नृपतन राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा॥
धावहु बेगि भरत पहिं जाहू। नृप-सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू॥
एतनेइ कहेउ भरत सन जाई। गुर बोलाइ पठयेउ दोउ भाई॥
सुनि मुनि आयसु धावन[7] धाए। चले बेगि बरबाज लजाए॥
अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन[8] होहिं भरत कहुँ तब तें॥
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना[9]॥
बिप्र[10] जेवाँइ देहिं नित दाना। सिव-अभिषेक[11] करहि बिधिनाना॥

---

१ त्यागकर २ ब्रह्माण्ड ३ रोते हैं ४ नेत्रों से रहित अन्धा ५ रात्रि ६ दूर किया ७ दूत ८ अशुभ ९ वहम १० ब्राह्मण ११ महादेव की पूजा

† पिता के चित्तरूप पपीहा के लिये बादल रूप (रूपकालंकार)

माँगहिं हृदय महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई॥

दो०—एहि विधि सोचत भरत मन, धावन पहुँचे आइ।
गुरु अनुसासन[1] स्रवन सुनि, चले गनेसु मनाइ॥१५८॥

चले समीर वेग[2] हय हाँके। नाँघत सरित सैल बन बाँके॥
हृदय सोचु बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जिय जाउँ उड़ाई॥
एक निमेष वरषसम जाई। एहि विधि भरत नगर नियराई॥
असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत[3] करारा[4]॥
खर सियार बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला॥
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगर विसेषि भयावनु लागा॥
खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम वियोग कुरोग विगोए[5]॥
नगर-नारि नर निपट दुखारी। मनहुँ सबन्हि सब संपति हारी॥

दो०—पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गवहिं[6] जोहारहिं जाहिं।
भरत कुसल पूँछि न सकहिं भय विषाद मन माहिं॥१५९॥

हाट बाट[7] नहिं जाहिं निहारी। जनु पुर दहँ[8] दिसि लागि दवारी[9]॥
आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। हरषी रवि कुल जलरुह-चंदिनि॥
सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारहिं भेंटि भवन लेइ आई॥
भरत दुखित परिवारु निहारा। मानहुँ तुहिन[10] बनज बनु[11] मारा॥
कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती॥
सुतहि ससोच देखि मनु मारें। पूछति नैहर कुसल हमारें॥
सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूँछी निज-कुल-कुसल भलाई॥
कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय रामु लखन प्रिय भ्राता॥

सो०—सुनि सुतवचन सनेहमय कपटनीर भरि नयन।
भरत स्रवन मन सूल सम पापिनि बोली वयन॥१६०॥

---

१ आज्ञा २ हवा के समान तीव्र ३ बुरे क्षेत्र में ४ काग कौआ ५ पीड़ित ६ चुपचाप चले जाते हैं ७ रास्ता ८ दसों दिशा ९ अग्नि १० पाला ११ कमलों का वन।

तात बात मैं सकल सवाँरी । भइ मथरा सहाय विचारी
कछुक काज विधि वीच विगारेउ । भूपति सुर-पति-पुर-पगु धारेउ
सुनत भरत भयविबस बिपादा । जनु सहमेउ[1] करि केहरिनाद
तात तात हा तात पुकारी । परे भूमितल व्याकुल भारी
चलत न देखन पायेउँ तोही । तात न रामहि सौंपेहु मोही
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी । कहु पितुमरन-हेतु महतारी
सुनि सुतवचन कहति कैकेई । मरमु पाँछि जनु माहुर[2] देई
आदिहु ते सब आपनि करनी । कुटिल कठोर मुदितमन बरनी

दो०—भरतहि बिसरेउ[3] पितुमरन, सुनत राम बन-गौनु ।
हेतु अपनपउ[4] जानि जिय, थकित रहे धरि मौनु ॥ १६

बिकल बिलोकि सुतहि समुझावन । मनहुँ जरे पर लोनु[5] लगावति
तात राउ नहिं सोचइ जोगू । बड़इ सुकृत जसु कीन्हेउ भोग
जीवत सकल जनम फल पाए । अत अमर-पति सदन[7] सिधा
अस अनुमानि सोचु परिहरहू । सहित समाज राज पुर करहु
सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू । पाकें छतु[8] जनु लाग अँगार
धीरजु धरि भरि लेहिं उसासा । पापिन सबहिं भाँति कुल नास
जौं पै कुरुचि रही अति तोही । जनमत काहे न मारेसि मोहि
पेड काटि तै पालउ सींचा । मीनजिअन हित बारि उलीच

दो०—हंसबंसु[9] दसरथु जनकु राम लखन से भाइ ।
जननी तू जननी भई विधि सन कछु न बसाइ ॥ १६

जब तैं कुमति कुमत जिय ठयेऊ । खंड खंड होइ हृदय न गयेउ
बर माँगत मन भइ नहि पीरा । गरि न जीह, मुँह परेउ न की
भूप प्रतीति[10] तोरि किमि कीन्ही । मरनकाल बिधि मति हरि लीन्ह

१ डर गया २ विष ३ भूल गये ४ अपने आपको ५ शान्त ६ न
७ मरने पर स्वर्ग मे गये ८ घाव ९ सूर्य वंश १० विश्वास ।

निधिहु न नारि हृदय-गति जानी । सकल कपट अघ अवगुन खानी॥
सरल सुसील धरम रत राऊ । सो किमि जानै तीयसुभाऊ ॥
अस को जीव जंतु जग माहीं । जेहि रघुनाथ प्रान-प्रिय नाहीं ॥
भे अति अहित[1] राम तेउ तोही । को तू अहसि[2] सत्य कहु मोही ॥
जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई । आँखि ओट उठि बैठहि जाई ॥

दो०—राम विरोधी-हृदय[3] तें प्रगट कीन्ह विधि मोहि ।
मो समान को पातकी[4] वादि कहौं कछु तोहि ॥ १६३ ॥

सुनि सत्रुघन[5] मातु कुटिलाई । जरहिं गात रिस, कछु न बसाई ॥
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई । बसन विभूषन विविध बनाई ।
लखि रिस भरेउ लखन-लघु भाई । बरत अनल[6] घृत आहुति पाई ॥
हुमगि लात तकि कूबर मारा । परि मुँह भरि महि करत पुकारा ॥
कूबर टूटेउ, फूट कपारू । दलित दसन[8] मुख रुधिर प्रचारू[9]॥
आह दइअ मैं काह नसावा । करत नीक फलु अनइस[10] पावा ।
सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी । लगे घसीटन धरि धरि झोटी ॥
भरत दयानिधि दीन्ह छुड़ाई । कौसिल्या पहिं गे दोउ भाई ॥

दो०—मलिन बसन बिबरन बिकल, कृस सरीर दुखभारु ।
कनक-कलप-बर-बेलि बन[11], मानहुँ हनी तुसारु[12] ॥१६४॥

भरतहिं देखि मातु उठि धाई । मुरछित अवनि परी झइँ आई[13]॥
देखत भरतु बिकल भए भारी । परे चरन तन दसा बिसारी ॥
मातु तात कहँ देहि देखाई । कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई ॥
कैकइ कत जननी जग माँझा । जौ जनमत भइ काहे न बाँझा ॥
कुलकलंकु जेहि जनमेउ मोही । अपजस-भाजन प्रिय-जन-द्रोही ॥

---

१ अनहित २ है ३ राम का है जो विरोधी हृदय (बहु०) ४ पापी ५ शत्रुघ्न ६ अग्नि ७ जोश में आकर या उछल कर ८ टूटे हुए दाँतों से ९ मुँह से खून बहने लगा १० बुरा ११ सुवर्ण की सुन्दर कल्पलताओं को १२ पाला १३ मूर्छा ।

को त्रिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी॥
पितु सुरपुर बन रघुकुल-केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥
धिग मोहि भयेउँ बेनु-बन-आगी। दुसह-दाह-दुख-दूषन-भागी॥

दो०—मातु भरत के बचन मृदु, सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिये उठाइ लगाइ उर, लोचन मोचति बारि॥ १६५॥

सरल सुभाइ माय हिय लाए। अतिहित मनहुँ राम फिरि आए॥
भेंटेउ बहुरि लखन-लघु-भाई। सोकु सनेहु न हृदय समाई॥
देखि सुभाउ कहत सब कोई। राममातु अस काहे न होई॥
माता भरतु गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे॥
अजहुँ बच्छ, बलि, धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल-करम गति अघटित[१] जानी॥
काहुहि दोस देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता॥
जो एतेहु दुख मोहि जिआवा। अजहुँ को जानै का तेहि भावा॥

दो०—पितु आयसु भूषन बसन, तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरष न हृदय कछु, पहिरे बलकल चीर॥ १६६॥

मुखप्रसन्न मन राग न रोषू। सब कर सब बिधि करि परितोषू॥
चले बिपिन[२] सुनि सिय सँग लागी। रहइ न राम-चरन-अनुरागी॥
सुनतहि लखनु चले उठि साथा। रहहिं न जतन किए रघुनाथा॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई॥
राम लखनु सिय बनहि सिधाए। गइउँ न संग न प्रान पठाए॥
एहु सबु भा इन्ह आँखिन्ह आगे। तउ न तजा तनु जीव अभागे॥
मोहि न लाज निज नेहु निहारी। राम सरिस सुत मैं महतारी॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना। मोर हृदय सत कुलिस-समाना॥

---

१ अटल जो मिट न सके २ बन।

दो०—कौसल्या के वचन सुनि, भरत सहित रनिवासु ।
व्याकुल विलपत राजगृह मानहुँ सोकनिवासु ॥१६७॥

विलपहिं विकल भरत दोउ भाई । कौसल्या लिये हृदय लगाई ॥
भाँति अनेक भरत समुझाए । कहि विवेकमय वचन सुनाए ॥
भरतहु मातु सकल समुझाई । कहि पुरान स्रुति कथा सुहाई ॥
छलविहीन सुचि सरल सुबानी । बोले भरत जोरि जुग पानी ॥
जे अघ मातु पिता सुत मारें । गाइगोठ[1] महिसुर-पुर जारें ॥
जे अघ तिय-बालक-बध[2] कीन्हे । मीत महीपति माहुर[3] दीन्हे ॥
जे पातक उपपातक अहहीं । करम-बचन मन-भव[4] कवि कहहीं ॥
ते पातक मोहि होहु विधाता । जौं एहु होइ मोर मत माता ॥

सो०—जे परिहरि हरि-हर चरन, भजहिं भूतगन घोर ।
तेहि कै गति मोहि देउ विधि, जौं जननी मत मोर ॥१६८॥

बेचहिं बेदु धरम दुहि लेहीं* । पिसुन पराय पाप कहि देहीं ॥
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी । वेदविदूषक विस्वविरोधी ॥
लोभी लंपट[5] लोलुपचारा[6] । जे ताकहिं परधनु परदारा ॥
पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा । जौं जननी यहु संमत मोरा ॥
जे नहिं साधु संग अनुरागे । परमारथ पथ बिमुख अभागे ॥
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई । जिन्हहि न हरि-हर-सुजसु सुहाई ॥
तजि स्रुतिपथ बामपथ चलहीं । बंचक बिरचि बेषु जगु छलहीं ॥
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ । जननी जौं एहु जानौं भेऊ ॥

---

१ गौ शाला २ स्त्री और बालकों का बध ३ विष ४ काम, वाणी और मन से पैदा हुए ५ छलिया, ६ कपटी ७ कर्म, मन वाणी से झूठे आच... जाने = कपट का भेष बनाकर ।

* 'धन के लिये कुपात्र को वेद पढ़ाना' यह बेचना और गाय ...पना पुत्रा का बेचना' यह धन का दुहना है । पातक महापाप —यथा ...या, सुरापान, गुरुस्त्री प्रेम, झूठ बोलना आदि और नियम भंग, चोरी ...ा गवाही आदि उपपातक हैं ।

दो०—मातु भरत के वचन सुनि, साँचे सरल सुभाय।
कहत रामप्रिय तात तुम्ह सदा वचन मनकाय[1] ॥१६९॥

राम प्रान ते प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रान तें प्यारे॥
विधु विष चवे[2] स्रवे[3] हिमु[4] आगी। होइ वारिचर वारि विरागी॥
भये ज्ञान वरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार एहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुखु सुगति न लहहीं॥
अस कहि मातु भरत हिय लाये। थन पय स्रवहिं नयन जल छाये॥
करत बिलाप बहुत एहि भाँती। बैठेहि बीति गई सब राती॥
वामदेउ वसिष्ठ तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए॥
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ वचन सुदेसे॥

दो०—तात हृदय धीरजु धरहु, करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुरुवचन सुनि, करन कहेउ सब काजु॥१७०॥

नृपतनु वेद-विहित अन्हवावा। परम विचित्र विमान बनावा॥
गहि पग भरत मातु सब राखी। रहीं राम दरसन अभिलाषी॥
चंदन-अगर-भार[6] बहु आए। अमित अनेक सुगंध सुहाए॥
सरजुतीर रचि चिता बनाई। जनु सुर-पुर-सोपान[7] सुहाई॥
एहि विधि दाह क्रिया सब कीन्ही। विधिवत न्हाइ तिलांजलि[8] दीन्ही॥
सोधि सुमृति[9] सब वेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात-विधाना[10]॥
जहँ जस मुनिवर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सब कीन्हा॥
भए विसुद्ध दिए सब दाना। धेनु बाजि गज वाहन नाना॥

दो०—सिंहासन भूषन वसन अन्न धरनि धन धाम।
दिए भरत लहि भूमिसुर, भे परिपूरन काम॥१७१॥

पितुहित भरत कीन्हि जस करनी। सो मुख लाख जाहि नहिं बरनी॥

१ शरीर २ टपके ३ बरसावे ४ पाला ५ पानी को छोड़दे ६ (भार) तोल का प्रमाण ७ स्वर्ग की सीढ़ी ८ मृतात्मा को तिल आदि डालकर तर्पण ९ स्मृति १० दशाकर्म।

सुदिनु सोधि मुनिवर तब आए । सचिव महाजन सकल बोलाए ॥
बैठे राज सभा सब जाई । पठए बोलि भरत दोउ भाई ॥
भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे । नीति धरम मय बचन उचारे ॥
प्रथम कथा सब मुनिवर बरनी । कैकइ कुटिल कीन्हि जस करनी ॥
भूप धरमब्रतु सत्य सराहा । जेहि तनु परिहरि प्रेमु निबाहा ॥
कहत राम-गुन-सील-सुभाऊ । सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ ॥
बहुरि लषन सिय-प्रीति बखानी । सोक-सनेह मगन मुनि ग्यानी ॥

दो०—सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु, बिधि हाथ ॥१७१॥

अस बिचारि केहि देइअ दोसू । ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोसू ॥
तात बिचारु करहु मन माहीं । सोचु जोगु दसरथु नृप नाहीं ॥
सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना[1] । तजि निज धरम बिषय लयलीना[2] ॥
सोचिअ नपति जो नीति न जाना । जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ॥
सोचिअ बयसु[3] कृपन[4] धनवानू । जो न अतिथि सिव भगति सुजानू ॥
सोचिअ सूद्र बिप्र अपमानी[5] । मुखर[6] मानप्रिय ग्यानगुमानी[7] ॥
सोचिअ पुनि पतिबंचक[8] नारी । कुटिल कलहप्रिय[9] इच्छाचारी ॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई । जो नहिं गुर आयसु अनुसरई ॥

दो०—सोचिअ गृही[11] जो मोहबस, करै करमपथ त्याग ।
सोचिअ जती प्रपचरत[12], बिगत[13] बिबेक बिराग ॥१७२॥

बैखानस[14] सोइ सोचन जोगू । तपु बिहाइ जेहि भावै भोगू ॥
सोचिअ पिसुन[15] अकारन क्रोधी । जननि जनक-गुरु-बंधु बिरोधी ॥

---

१ वेद से जो रहित हो २ लगा हुआ ३ वैश्य ४ लोभी ५ ब्राह्मण
। जो अपमान कर (बहु०) ६ बकवादी ७ घमण्डी ८ ज्ञान का अभिमान
। जिसको (बहु०) ९ पति को धोका देने वाली १० लड़ाई ही जिसको
प्यारी है ११ गृहस्थी १२ जालसाज १३ रहित १४ वानप्रस्थ १५ छलिया

सब विधि सोचिअ पर-अपकारी । निज तनु-पोषक[1] निरदय भारी ॥
सोचनीय सब ही विधि सोई । जो न छाँडि छलु हरिजन होई ॥
सोचनीय नहि कोसलराऊ । भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
भयेउ, न अहै, न अब होनिहारा । भूप भरत जस पिता तुम्हारा ॥
विधि हरि हर सुरपति दिसिनाथा । बरनहिं सब दसरथ गुन-गाथा ॥

दो०—कहहु तात केहि भाँति कोउ, करहि बडाई तासु ।
राम लषन तुम सत्रुहन, सरिस सुअन[2] सुचि जासु ॥ १७४ ॥

सब प्रकार भूपति बडभागी । बादि बिषादु करिअ तेहि लागी ॥
एहु सुनि समुझि सोचु परिहरहू । सिर धरि राज-रजायसु[3] करहू ॥
राय राजपदु तुम्ह कहँ दीन्हा । पिता-बचन फुर चाहिअ कीन्हा ॥
तजे रामु जेहि बचनहि लागी । तनु परिहरेउ रामबिरहागी[4] ॥
नृपहि बचन प्रिय, नहिं प्रिय प्राना । करहु तात पितुबचन प्रमाना ॥
करहु सीस धरि भूपरजाई । है तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई ॥
*परसुराम पितुआग्या राखी । मारी मातु, लोग सब साखी ॥
†तनय जजातिहि जौवनु दयेऊ । पितुआग्या अघ अजसु न भयेऊ ॥

---

१ अपने शरीर को पुष्ट करने वाला २ पुत्र ३ राजा की आज्ञा ४ श्री रामचन्द्र जी के विरह की अग्नि ।

* एक दिन परशुराम जी की माता रेणुका जमुना स्नान को गईं । वहाँ मछलियों को केलि करते देख उसे भी क्रीडा की इच्छा हुई । घर आकर पति से कहा । यह सुनकर यमदग्नि ऋषि ने अपने पुत्रों को उसक शिर काटने की आज्ञा दी । तीन पुत्रों ने आज्ञा न मानी । तब छोटे पु परशुराम ने तीनों भाई व माता का शिर पिता के कहने से काट डाला । तब मुनि बोले कि 'वर माँगो' उन्होंने कहा 'ये चारों जी उठें ।'

† चन्द्रवंशी राजा नहुष के पुत्र राजा ययाति के दो रानियाँ थीं । एक शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी दूसरी वृषपर्वा की शर्मिष्ठा । शुक्राचार्य ने विवाह के समय राजा से यह प्रतिज्ञा करा ली थी कि राजा शर्मिष्ठा से प्रेम न करे । परन्तु जब शर्मिष्ठा के पुत्र पैदा हुआ तो पता लगा कि

दो०—अनुचित उचित विचारु तजि, जे पालहिं पितु बैन ।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति-ऐन ॥१७५॥

वसि नरेस बचन फुर करहू । पालहु प्रजा सोक परिहरहू ॥
पुर नय पाइहि परितोषू । तुम्ह कहँ सुकृत सुजसु, नहि दोषू ॥
विदित सम्मत सबहीका । जेहि पितु देइ सो पावै टीका ॥
रहु राजु परिहरहु गलानी । मानहु मोर बचन हित जानी ॥
नि सुखु लहब रामबैदेही । अनुचित कहब न पंडित केही ॥
सल्यादि सकल महतारी । तेउ प्रजासुख होहिं सुखारी ॥
रम तुम्हार राम कर जानिहि । सो सब निधि तुम्ह सन भल मानिहि ॥
पिहु राजु राम के आएँ । सेवा करेहु सनेह सुहाएँ ॥

दो०—कीजिअ गुर-आयसु अवसि कहहि सचिव कर जोरि ।
रघुपति आएँ उचित जस तस तब करब बहोरि ॥१७६॥

ौसल्या धरि धीरजु कहई । पूत[1] पथ्य[2] गुरु आयसु अहई ॥
आदरिअ करिअ हित मानी । तजिअ बिषादु कालगति जानी ॥
न रघुपति सुरपुर नरनाहू । तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू[3] ॥
रिजन प्रजा सचिव सब अंबा । तुम्हही सुत सब कहँ अवलंबा ॥
खि बिधि बाम कालु-कठिनाई । धीरजु धरहु मातु बलि जाई ॥
र धरि गुरआयुस अनुसरहू । प्रजा पालि परि-जन दुख हरहू ॥

व शर्मिष्ठा के पुत्र पैदा हुआ तो पता लगा कि राजा ने नियम भंग किया है ।
क्राचार्य जी ने उसे शाप दे कर बुड्ढा बना दिया । राजा ने जब बहुत
र्थना की तो शुक्राचार्य ने युवा अवस्था बदलने का नियम बना दिया ।
जा ने अपने सब पुत्रों से जवानी बदलने के लिये एक एक करके कहा
रन्तु कोई राजी न हुआ, केवल छोटे लड़के ने अपनी जवानी देकर बुढ़ापा ले
या । और १००० वर्ष पीछे वापिस लेकर पुरु नामक राज्याधिकारी हुआ ।

१ पुत् नाम नरक से जो बचावे वह पुत्र २ हितकारक ३ कायर बनते हो ।

सब विधि सोचिअ पर-अपकारी । निज तनु-पोषक[1] निरदय भारी
सोचनीय सब ही बिधि सोई । जो न छाँडि छलु हरिजन होई
सोचनीय नहिं कोसलराऊ । भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ
भयेउ, न अहै, न अब होनिहारा । भूप भरत जस पिता तुम्हारा
बिधि हरि हर सुरपति दिसिनाथा । बरनहिं सब दसरथ गुन-गाथा

दो०—कहहु तात केहि भाँति कोउ, करहि बड़ाई तासु ।
राम लषन तुम सत्रुहन, सरिस सुअन[2] सुचि जासु ॥ १७

सब प्रकार भूपति बडभागी । बादि बिषादु करिअ तेहि लागी
एहु सुनि समुझि सोचु परिहरहू । सिर धरि राज-रजायसु[3] करहू
राय राजपदु तुम्ह कहँ दीन्हा । पिता-बचन फुर चाहिअ कीन्हा
तजे रामु जेहि बचनहिं लागी । तनु परिहरेउ रामबिरहागी[4]
नृपहि बचन प्रिय, नहि प्रिय प्राना । करहु तात पितुबचन प्रमाना
करहु सीस धरि भूपरजाई । है तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई
*परसुराम पितुआग्याँ राखी । मारी मातु, लोग सब साखी
†तनय जजातिहि जौबनु दयेऊ । पितुआग्या अघ अजसु न भयेऊ

---

१ अपने शरीर को पुष्ट करने वाला २ पुत्र ३ राजा की आज्ञा ४
रामचन्द्र जी के विरह की अग्नि ।

* एक दिन परशुराम जी की माता रेणुका जमुना स्नान को गई
वहाँ मछलियों को केलि करते देख उसे भी क्रीडा की इच्छा हुई ।
आकर पति से कहा । यह सुनकर यमदग्नि ऋषि ने अपने पुत्रों को उस
सिर काटने की आज्ञा दी । तीन पुत्रों ने आज्ञा न मानी । तब छोटे पु
परशुराम ने तीनों भाई व माता का सिर पिता के कहने से काट डाला
तब मुनि बोले कि 'वर माँगो' उन्होंने कहा 'ये चारों जी उठें ।'

† चन्द्रवंशी राजा नहुप के पुत्र राजा ययाति के दो रानियाँ थीं
एक शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी दूसरी वृषपर्वा की शर्मिष्ठा । शुक्राचार्य
ने विवाह के समय राजा से यह प्रतिज्ञा करा ली थी कि राजा शर्मिष्ठा से
प्रेम न करे। परन्तु जब शर्मिष्ठा के पुत्र पैदा हुआ, तो पता लगा, कि

दो०—अनुचित उचित विचारु तजि, जे पालहिं पितु बैन ।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति-ऐन ॥१७५॥

अवसि नरेस बचन फुर करहू । पालहु प्रजा सोक परिहरहू ॥
सुरपुर नृप पाइहि परितोषू । तुम्ह कहँ सुकृत सुजसु, नहिं दोषू ॥
बेदबिदित संमत सबहीका । जेहि पितु देइ सो पावै टीका ॥
करहु राजु परिहरहु गलानी । मानहु मोर बचन हित जानी ॥
सुनि सुखु लहब रामबैदेही । अनुचित कहब न पंडित केही ॥
कौसल्यादि सकल महतारी । तेउ प्रजासुख होहिं सुखारी ॥
परम तुम्हार राम कर जानिहि । सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि ॥
सौंपेहु राजु राम के आएँ । सेवा करेहु सनेह सुहाएँ ॥

सो०—कीजिअ गुर-आयसु अवसि कहहिं सचिव कर जोरि ।
रघुपति आएँ उचित जस तस तब करब बहोरि ॥१७६॥

कौसल्या धरि धीरजु कहई । पूत[१] पथ्य[२] गुरु आयसु अहई ॥
सो आदरिअ करिअ हित मानी । तजिअ बिषादु कालगति जानी ॥
बन रघुपति सुरपुर नरनाहू । तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू[३] ॥
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा । तुम्हही सुत सब कहँ अवलंबा ॥
लखि बिधि बाम कालु-कठिनाई । धीरजु धरहु मातु बलि जाई ॥
सिर धरि गुरआयुस अनुसरहू । प्रजा पालि परि-जन-दुख हरहू ॥

... शर्मिष्ठा के पुत्र पैदा हुआ तो पता लगा कि राजा ने नियम भंग किया है। ...चार्य जी ने उसे शाप दे कर बुड्ढा बना दिया। राजा ने जब बहुत ...विनती की तो शुक्राचार्य ने युवा अवस्था बदलने का नियम बता दिया। ...राजा ने अपने सब पुत्रों से जवानी बदलने के लिये एक एक करके कहा ...परन्तु कोई राज़ी न हुआ, केवल छोटे लड़के ने अपनी जवानी देकर बुढ़ापा ले ...लिया। और १००० वर्ष पीछे वापिस लेकर पुरु नामक राज्याधिकारी हुआ।

१ पुत् नाम नरक से जो बचावे वह पुत्र २ हितकारक ३ कायर बनते हो।

गुरु के वचन सचिव अभिनन्दनु । सुने भरत हिय हित जनु चन्दनु ।
सुनी बहोरि मातु मृदुबानी । सील-सनेह-सरल-रस सानी ।

छंद०—सानी सरल रस मातुबानी सुनि भरत व्याकुल भए ।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत विरह उर अंकुर नए ।
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की ।
तुलसी सराहत सकल सादर सींव सहज सनेह की[१] ॥

सो०—भरत कमलकर जोरि, धीर-धुरधर धीर धरि ।
वचनु अमिअ जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहिं ॥१७७

मोहि उपदेसु दीन्ह गुरु नीका । प्रजा सचिव[२] समत सबही का ।
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा । अवसि सीस धरि चाहौं कीन्हा ।
गुरु-पितु-मातु-स्वामि हित-बानी । सुनिमन मुदित करिअ भलिजानी ।
उचित कि अनुचित किए बिचारू । धरमु जाइ सिर पातक भारू ।
तुम्ह तौ देउ सरल सिख सोई । जो आचरत[३] मोर भल होई ।
जद्यपि एहि समुझत हौं नीके । तदपि होत परितोषु न जी के ।
अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू । मोहि अनुहरत सिखावनु देहू ।
उत्तर देउँ छमब   अपराधू । दुखित-दोष-गुन गनहिं न साधू ।

दो०—पितु सुरपुर, सिय राम बन, करन कहहु मोहि राजु ।
एहि तें जानहु मोर हित, कै आपन बड काजु ॥१७८

हित हमार सिय पति-सेवकाई । सो हरि लीन्हि मातु कुटिलाई ।
मैं अनुमानि दीख मन माहीं । आन[४] उपाय मोर हित नाहीं ।
सोकसमाजु राजु केहि लेखे । लषन-राम-सिय पद बिनु देखे ।
बादि[५] बसन बिनु भूषन-भारू । बादि बिरति बिनुब्रह्म बिचारू ।
सरुज सरीर बादि बहु भोगा । बिनु हरिभगति जाय जप जोगा ।
जाय जीव बिनु देह सुहाई । बादि मोर सबु बिनु रघुराई ।

१ स्वाभाविक प्रेम की सीमा २ मन्त्री ३ करने से ४ दूसरा ५ व्यर्थ ।

जाउँ राम पहिं आयसु देहू। एकहि आँक मोर हित एहू॥
मोहि नृपकरि भल आपन चहहू। सोउ सनेह जड़ता बस[1] कहहू॥

दो०—कैकइसुअन कुटिल मति, रामबिमुख गतलाज[2]।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस मोहि से अधम के राज। १७९॥

कहउँ साँच सब सुनि पतियाहू। चाहिअ धरमसील नरनाहू॥
मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं। रसा[3] रसातल[4] जाइहि तबहीं॥
मोहि समान को पापनिवासू। जेहि लगि सीयराम बनबासू॥
राय राम कहुँ कानन दीन्हा। बिछुरत गमनु अमरपुर[5] कीन्हा॥
मैं सठ सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनउँ सचेतू॥
बिनु रघुबीर बिलोकि अवासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू[6]॥
राम पुनीत बिषयरस रूखे। लोलुप भूमिभोग के भूखे॥
कहँ लगि कहउँ हृदय-कठिनाई। निदरि कुलिसु जेहि लही बड़ाई॥

दो०—कारन तें कारजु कठिन, होइ दोस नहि मोर।
कुलिस अस्थि[7] तें उपल ते लोह कराल कठोर॥१८०॥

कैकेईभव तनु अनुरागे। पाँवर[8] प्रान अघाइ अभागे॥
जो प्रियबिरह[9] प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे॥
लषन-राम सिय कहुँ बनु दीन्हा। पठै अमरपुर पतिहित कीन्हा॥
लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू। दीन्हेउ प्रजहिं सोकु सतापू[10]॥
मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकई सब कर काजू॥
एहि तें मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका[11]॥
कैकइजठर[12] जनमि जगमाहीं। एह मोहि कहँ कछु अनुचित नाहीं।
मोरि बात सब बिधिहि बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई॥

---

१ मूर्खता से २ पृथ्वी ३ पाताल ४ अमरावती ५ हँसी ६ हड्डी ७ ... ८ प्यारे की जुदाई ९ दुःख १० राज्य ११ कैकयी के पेट में।
... निर्लज्ज।

गुरु के बचन सचिव अभिनंदनु । सुने भरत हिय हित जनु चंदनु ॥
सुनी बहोरि मातु मृदुबानी । सील-सनेह-सरल-रस सानी ॥

छंद०—सानी सरल रस मातुबानी सुनि भरत व्याकुल भए।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नए॥
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सींव सहज सनेह की[१] ॥

सो०—भरत कमलकर जोरि, धीर-धुरंधर धीर धरि।
बचनु अमिअ जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि ॥१७७॥

मोहि उपदेसु दीन्ह गुरु नीका । प्रजा सचिव[२] समत सबहीका ॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहौं कीन्हा ॥
गुरु-पितु-मातु-स्वामि-हित-बानी। सुनिमन मुदित करिअ भलिजानी।
उचित कि अनुचित किए बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू ॥
तुम्ह तौ देउ सरल सिख सोई। जो आचरत[३] मोर भल होई ॥
जद्यपि एहि समुझत हौं नीके। तदपि होत परितोषु न जी के ॥
अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू ॥
उत्तर देउँ छमब अपराधू। दुखित-दोष-गुन गनहिं न साधू ॥

दो०—पितु सुरपुर, सिय राम बन, करनु कहहु मोहि राजु।
एहि ते जानहु मोर हित, कै आपन बड काजु ॥१७८॥

हित हमार सिय-पति-सेवकाई। सो हरि लीन्हि मातु कुटिलाई ॥
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन[४] उपाय मोर हित नाहीं ॥
सोकसमाजु राजु केहि लेखे। लषन-राम-सिय पद बिनु देखे ॥
बादि[५] बसन बिनु भूषन-भारू। बादि बिरति बिनुब्रह्म बिचारू ॥
सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरिभगति जाय जप जोगा ॥
जाय जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सबु बिनु रघुराई ॥

१ स्वाभाविक प्रेम की सीमा २ मन्त्री ३ करने से ४ दूसरा ५ व्यर्थ।

जाउँ राम पहिं आयसु देहू । एकहि आँक मोर हित एहू ॥
मोहि नृपकरि भल आपन चहहू । सोउ सनेह जड़ता बस[1] कहहू ॥

दो०—कैकइसुअन कुटिल मति, रामबिमुख गतलाज ।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस मोहि से अधम के राज ॥१७९॥

कहउँ साँच सब सुनि पतियाहू । चाहिअ धरमसील नरनाहू ॥
मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं । रसा[2] रसातल[3] जाइहि तबहीं ॥
मोहि समान को पापनिवासू । जेहि लगि सीयराम बनबासू ॥
राय राम कहुँ कानन दीन्हा । बिछुरत गमनु अमरपुर[4] कीन्हा ॥
मैं सठ सब अनरथ कर हेतू । बैठ बात सब सुनउँ सचेतू ॥
बिनु रघुबीर बिलोकि अबासू । रहे प्रान सहि जग उपहासू[5] ॥
राम पुनीत बिषयरस रूखे । लोलुप भूमिभोग के भूखे ॥
कहँ लगि कहउँ हृदय-कठिनाई । निदरि कुलिसु जेहि लही बड़ाई ।

दो०—कारन तें कारजु कठिन, होइ दोस नहिं मोर ।
कुलिस अस्थि[6] तें उपल तें लोह कराल कठोर ॥१८०॥

कैकेईभव तनु अनुरागे । पाँवर[7] प्रान अघाइ अभागे ॥
जो प्रियबिरह[8] प्रान प्रिय लागे । देखब सुनब बहुत अब आगे ॥
लखन राम सिय कहुँ बनु दीन्हा । पठे अमरपुर पतिहित कीन्हा ॥
लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू । दीन्हेउ प्रजहिं सोकु सतापू[9] ॥
मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू । कीन्ह कैकई सब कर काजू ॥
एहि ते मोर काह अब नीका । तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका[10] ॥
कैकइजठर[11] जनमि जगमाहीं । एह मोहि कहँ कछु अनुचित नाहीं ॥
मोरि बात सब बिधिहि बनाई । प्रजा पाँच कत करहु सहाई ॥

---

1 मूर्खता से 2 पृथ्वी 3 पाताल 4 अमरावती 5 [illegible] 6 [illegible]
7 नीच 8 प्यारे की जुदाई 9 दुःख 10 राज्य 11 [illegible] ।
[illegible] राम से विमुख, राम विमुख । [illegible]

दो०—ग्रहग्रहीत पुनि बातबस, तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पिआइअ बारुनी, कहहु कवन उपचार ॥१८१॥

कैकइसुअन-जोग जग जोई। चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई ॥
दसरथतनय राम-लघु-भाई। दीन्हि मोहि बिधि बादि बडाई ॥
तुम्ह सब कहहु कढावन टीका। रायरजायसु सब कहँ नीका ॥
उतरु देउँ केहि बिधि केहि केही। कहहु सुखेन जथारुचि जेही ॥
मोहि कुमातु-समेत बिहाई। कहहु कहिहि को कीन्हि भलाई ॥
मो बिनु को सचराचर माहीं। जेहि सियरामु प्रानप्रिय नाहीं ॥
परम हानि सबु कहँ बड लाहू। अदिन मोर नहिं दूषन काहू ॥
ससय सील प्रेमबस अहहू। सबुइ उचित सबु जो कछु कहहू ॥

दो०—राममातु सुठि सरलचित, मो पर प्रेमु बिसेखि।
कहै सुभाय सनेहबस, मोरि दीनता देखि ॥१८२॥

गुरु बिबेक सागर जग जाना। जिन्हहि बिस्वकर-बदर-समाना ॥
मोकहँ तिलकसाज सज सोऊ। भए बिधि-बिमुख बिमुख सबकोऊ ॥
परिहरि रामु सीय जग माहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं ॥
सो मैं सुनब सहब सुख मानी। अंतहु कीच-तहाँ जहँ पानी ॥
डरु न मोहि जग कहहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिन सोचू ॥
एकै उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सियराम दुखारी ॥
जीवनलाहु लखन भल पावा। सबु तजि रामचरनु मन लावा ॥
मोर जनम रघुबर बन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी ॥

दो०—आपन दारुन दीनता, कहउँ सबहि सिर नाइ।
देखे बिनु रघुनाथ पद, जिय कै जरनि न जाइ ॥१८३॥

---

१ ग्रहों से ग्रसित २ सन्निपात में ३ डंक ४ शराब ५ ब्रह्मा ६ राज् दाता ७ सुख से ८ बुरे निर ९ सन्देह १० हथेली पर रक्खे हुए बेर क समान ११ उलटे १२ छोड कर १३ असह्य दु:खाग्नि १४ बडी गरीबी।

आन उपाय मोहि नहिं सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा॥
एकहि आँक[1] इहै मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं॥
जद्यपि मैं अनभल अपराधी[2]। भइ मोहि कारन सकल उपाधी[3]॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेषी॥
सीलु सकुचि सुठि सरल सुभाऊ। कृपा-सनेह-सदन रघुराऊ॥
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु[4] सेवकु जद्यपि बामा[5]॥
तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी॥
जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि[6] राम रजधानी॥

दो०—जद्यपि जनमु कुमातु तें, मैं सठ सदा सदोस[7]।
आपन जानि न त्यागिहहिं, मोहि रघुबीर भरोस॥१८४॥

भरत बचन सब कहँ प्रिय लागे। राम सनेह सुधा[8] जनु पागे[9]॥
लोग बियोग बिषम बिष दागे। मंत्र सबीज सुनत जनु जागे॥
मातु सचिव गुर पुर-नर-नारी। सकल सनेह बिकल भये भारी॥
भरतहिं कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति-तनु आही[10]॥
तात भरत अस काहे न कहहू। प्रान समान राम प्रिय अहहू॥
जो पाँवरु[11] अपनी जड़ताई। तुम्हहिं सुगाइ[12] मातुकुटिलाई॥
सो सठु कोटिक-पुरुष-समेता। बसहि कलपसत[13] नरकनिकेता[14]॥
अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई। हरै गरल[15] दुख दारिद दहई[16]॥

दो०—अवसि चलिअ बन राम जहँ, भरत मंत्र भल कीन्ह।
सोकसिंधु बूड़त सबहि, तुम्ह अवलंबनु दीन्ह॥१८५॥

भा सबके मन मोदु न थोरा। जनु घनधुनि सुनि चातक मोरा॥
चलत प्रात लखि निरनउ[17] नीके। भरतु प्रानप्रिय भे सबही के॥

---

१ ध्वनि–'जाऊं' २ कसूरवार ३ झगड़े ४ बच्चा ५ प्रतिकूल ६ लौट आवें ७ अपराधी ८ राम के स्नेह रूपी अमृत ९ सने हुए १० राम के प्रेम की शरीरधारी मूर्ति हैं ११ नीच १२ कहे १३ सौ कल्प तक १४ नरक+निकेता यमपुर १५ विष १६ नाश होता है १७ निर्णय।

मुनिहिं बंदि भरतहिं सिरु नाई । चले सकल[1] घर बिदा कराई ॥
धन्य-भरतु जीवनु जग माहीं । सीलु सनेह सराहत[2] जाहीं ॥
कहहिं परसपर भा बड काजू । सकल चलै कर[3] साजहिं साजू ॥
जेहिं राखहिं रहु घर रखवारी । सो जाने जनु गरदन मारी[4] ॥
कोउ कह रहन कहिअ नहिं काहू । को न चहै जग जीवन लाहू ॥

दो०—जरउ सो संपति-सदन-सुखु, सुहृद मातु पितु भाइ ।
सनमुख होत जो रामपद, करै न सहज सहाइ[5] ॥१८६॥

घर घर साजहिं वाहन नाना । हरषु हृदय परभात[6] पयाना ॥
भरत जाइ कर कीन बिचारू । नगर बाजि गज भवन भँडारू ॥
संपति सब रघुपति कै आही । जौं बिनु जतन चलउँ तजि ताही ॥
तो परिनाम[7] न मोरि भलाई । पाप-सिरोमनि[8] साइँ दुहाई[9] ॥
करै स्वामिहित सेवक सोई । दूषन[10] कोटि देइ किन कोई ॥
अस विचारि सुचि सेवक बोले । जे सपनेहुँ निज धरमु न डोले[11] ॥
कहि सब मरमु धरमु सब भाखा । जो जेहि लायक सो तहँ राखा ॥
करि सबु जतनु राखि रखवारे । राममातुपहिं भरत सिधारे ॥

दो०—आरति जननी जानि सब, भरत सनेह सुजान ।
कहेउ बनावन पालकी सजन[12] सुखासन[13] जान ॥१८७॥

चक्कचक्कि[14] जिमि पुर नर-नारी । चहत प्रात उर आरत भारी ॥
जागत सब निसि भयेउ बिहाना[15] । भरत बोलाए सचिव सुजाना ॥
कहेउ लेहु सब तिलक समाजू । बनहि देब मुनि रामहिं राजू ॥
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे । तुरत तुरग रथ नाग[16] सँवारे ॥

---

१ सब लोग २ प्रशंसा करते हुए ३ चलने का ४ प्राण लिये ५ सहायता ६ प्रातःकाल ७ अंत में ८ पापियों में सरदार ९ स्वामी की सौगंध १० (दूषण) दोष ११ पक्के ईमानदार १२ तैयार करने को १३ सुख+आसन १४ चकवा १५ प्रातःकाल १६ हाथी ।

अरुधती[1] अरु अगिनिसमाजू[2]। रथ चढि चले प्रथम मुनिराजू॥
विप्रवृन्द[3] चढि वाहन[4] नाना। चले सकल तप-तेज निधाना॥
नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूटकहँ कीन्ह पयाना॥
सिबिका सुभग[5] न जाहिं बखानी। चढिचढि चलत भई सब रानी॥

दो०—सौंपि नगर सुचि सेवकनि, सादर सबहिं चलाइ॥
सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरतु दोउ भाइ॥१८८॥

रामदरस बस सब नरनारी। जनु करि करिनि[6] चले तकि बारी[7]॥
बन सिय रामु समुझि मन माहीं। सानुज[8] भरत पयादेहि जाहीं॥
देखि सनेहु लोग अनुरागे। उतरि चले हय गय रथ त्यागे॥
जाइ समीप राखि निज डोली। राम मातु मृदुबानी बोली॥
तात चढहु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवारु दुखारी॥
तुम्हरे चलत चलिहि सब लोगू। सकल सोक कृस[9] नहि मग जोगू॥
सिर धरि बचन चरन सिरु नाई। रथ चढि चलत भए दोउ भाई॥
तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसर गोमतितीर निवासू॥

दो०—पय अहार[10] फल असन[11] एक निसि भोजन सब लोग।
करत राम हित नेम व्रत, परिहरि भूषन भोग॥१८९॥

सई तीर बसि चले बिहाने। सृङ्गवेरपुर सब नियराने॥
समाचार सब सुने निषादा। हृदय बिचार करै सबिषादा॥
कारन कवनु भरतु बन जाहीं। है कछु कपट भाउ मनमाहीं॥
जौं पै जिय न होत कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई[12]॥
जानहिं सानुज रामहिं मारी। करउँ अकंटक राजु सुखारी[13]॥

---

१ वशिष्ठ पत्नी २ हवन सामग्री, श्रुवा, सारस्वत, समिधा अग्नि कुण्ड इत्यादि ३ ब्राह्मण लोग ४ सवारी ५ सुन्दर पालकी ६ हथिनी ७ पानी देखकर ८ स + अनुज भाई सहित ९ शोक से दुर्बल १० दूध पीकर ११ फल खाकर १२ सेना १३ निर्विघ्न सुख से।

भरत न राजनीति उर आनी । तब कलकु[1] अब जीवनुहानी[2]॥
सकल सुरासुर[3] जुरहिं जुझारा । रामहिं समर न जीतनिहारा ॥
का आचरजु भरत अस करहीं । नहिं विषवेलि अमियफलफरहीं॥

दोहा—अस बिचारि गुह ग्याति सन, कहेउ सजग सब होहु ।
हथवाँसहु[4] बोरहु तरनि[5], कीजिअ घाटारोहु[6] ॥१९०॥

होहु सँजोइल[7] रोकहु घाटा । ठाटहु सकल मरै के ठाटा[8] ॥
सनमुख लोह भरतसन लेऊँ । जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ॥
समरु मरन पुनि-सुर-सरि-तीरा । रामकाजु छनभगु[9] सरीरा ॥
भरत भाइ नृप मैं जन नीचू । बड़े भाग अस पाइय मीचू[10] ॥
स्वामिकाज करिहउँ रन रारी[11] । जस धवलिहउँ[12] भुवनदसचारी॥
तजउँ प्रान रघुनाथ-निहोरें । दुहूँ हाथ मुद मोदक[13] मोरें ॥
साधु समाज न जाकर लेखा । राम भगत महँ जासु न रेखा ॥
जाय जिअत जगसो महि भारू । जननी-जोवन बिटप-कुठारू[14] ॥

दोहा—बिगतविषाद निषादपति, सबहि बढाइ उछाहु ।
सुमिरि राम माँगेउ तुरत, तरकस धनुष सनाहु ॥१९१॥

वेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ । सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ ॥
भलेहि नाथ सब कहहिं सहरषा । एकहिं एक बढावै करषा ॥
चले निषाद जोहारि जोहारी । सूर सकल रन रूचै[15] रारी ॥
सुमिरि राम पद पकज-पनही । भाथा बाँधि चढाइन्हि धनही ॥
अँगरी[16] पहिरि कूँडि[17] सिर धरहीं । फरसा बाँस सेल सम[18] करहीं ॥
एक कुसल अति ओडन खाँडे । कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँडे॥

१ बुराई २ मृत्यु ३ सुर+असुर ४ पतवार ५ नाव ६ घाट रोक देना ७ सावधान ८ तैयारी ९ क्षण में जो नष्ट हो जाय (बहु०) १० मृत्यु ११ युद्ध १२ प्रकाशित कर दूँ १३ दोनों तरह भलाई है १४ माता के योवन रूप वृक्ष को कुल्हाडी होकर १५ अच्छी लगे १६ कवच १७ लोहे की टोपी १८ सुधारते है ।

निज निज साजु समाजु बनाई । गुह राउतहि[1] जोहारे जाई ॥
देखि सुभट सब लायक जाने । लै लै नाम सकल सनमाने ॥

दो०—भाइहु लावहु धोख जनि, आजु काजु बड मोहि ।
सुनि सरोष बोले सुभट, वीर अधीरु[2] न होहि ॥१९२॥

रामप्रताप नाथ बल तोरे । करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरे ॥
जीवत पाउ न पाछे धरहीं । रुंड-मुंड मय मेदिनि[3] करहीं ॥
दीख निषादनाथ भल टोलू[4] । कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू[5] ॥
एतना कहत छींक भइ बाएँ । कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाएँ ॥
बूढ एक कह सगुन विचारी । भरतहिं मिलिअ न होइहि रारी ॥
रामहिं भरत मनावन जाहीं । सगुन कहै अस विग्रहु[6] नाहीं ॥
सुनि गुह कहै नीक कह बूढा । सहसा[7] करि पछिताहि बिमूढा[8] ॥
भरत सुभाव सील बिनु बूझे । बडि हितहानि जानि बिन जूझे ॥

दो०—गहहु घाट भट सिमिट सब, लेउँ मरम मिलि जाइ ।
बूझि मित्र अरि मध्यगति तब तस करिहउँ आइ ॥१९३॥

लखब सनेहु सुभाय सुहाए । वैर प्रीति नहिं दुरै[9] दुराए ॥
अस कहि भेंट सँजोवन लागे । कंद मूल फल खग मृग माँगे ॥
मीन पीन[10] पाठीन[11] पुराने । भरि भरि भार कहारन्ह आने ॥
मिलन साजु सजि मिलन सिधाए । मंगलमूल सगुन सुभ पाए ॥
देखि दूरि ते कहि निज नामू । कीन्ह मुनीसहिं दंडप्रनामू ॥
जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा । भरतहिं कहेउ बुझाइ मुनीसा ॥
रामसखा[12] सुनि स्यंदनु[13] त्यागा । चले उतरि उमँगत[14] अनुरागा ॥
गाउँ जाति गुह नाउँ सुनाई । कीन्ह जोहारु माथ[15] महि लाई ॥

---

१ अपने स्वामी को २ घबडाओ नहीं ३ धरती ४ जमाव ५ लडाई
के बाजे ६ लडाई ७ शीघ्रता ८ मूर्ख ९ छिपत १० मोटी
११ मछली १२ राम का सखा गुह १३ रथ १४ (उमग) लहर में आकर
१५ धरती पर माथा टेक कर ।

दो०—करत दंडवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ ।
मनहुँ लखनसन भेंट भइ, प्रेमु न हृदय समाइ ॥१९४
भेंटत भरत ताहि अति प्रीती । लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती
धन्य धन्य धुनि मंगलमूला । सुर सराहि तेहि बरसहिं फूला
लोक वेद सब भाँतिहि नीचा । जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा
तेहि भरि अंक राम-लघु-भ्राता । मिलत पुलकपरिपूरित गाता
राम राम कहि जे जमुहाहीं । तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं
एहि तौ राम लाइ उर लीन्हा । कुल समेत जगु पावन कीन्हा
†करमनासा-जल। सुरसरि परई । तेहि को कहहु सीस नहिं धरई
उलटा नाम जपत जग जाना । *बालमीकि भए ब्रह्म समाना
दो०—स्वपच सबर खस जवन जड़, पाँवर कोल किरात ।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात ॥१९५
नहिं अचरज जुग जुग चलि आई । केहि न दीन्हि रघुबीर बड़ाई
रामनाम महिमा सुर कहहीं । सुनि सुनि अवध लोग सुख लहहीं
रामसखहिं मिलि भरत सप्रेमा । पूँछी कुसल सुमंगल छेमा
देखि भरत कर सीलु सनेहू । भा निषाद तेहि समय बिदेहू
सकुच सनेहु मोदु मन बाढ़ा । भरतहिं चितवत एकटक ठाढ़ा
धरि धीरजु पद बंदि बहोरी । विनय सप्रेम करत कर जोरी
कुसलमूल पदपंकज पेखी । मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी

† कर्मनाशा का जल सब पुण्यों को नष्ट कर देता है ।

* वाल्मीकि ने साधारण ब्राह्मण कुल में जन्म लिया था । बचप
न बहेलियों के साथ रहे । इससे बड़े होने पर लूट मारकर अपने बा
बच्चों का पालन करने लगे । एक बार ये सप्तऋषियों के पीछे दौड़
सप्तऋषियों ने पूछा कि तुम्हारे घर वाले केवल खाने वाले हैं या तुम
पाप के भी भागी हैं । इन्होंने घर वालों से जाकर पूछा तो कोरा जव
मिला । तब ऋषियों के उपदेश से राम नाम का यहाँ तक जप कि
कि शरीर पर दीमक जम गई । तब से इनका वाल्मीकि नाम हुआ ।

न प्रभु परम अनुग्रह तोरें । सहित कोटि कुल मंगल मोरें ।
दो०—समुझि मोरि करतूत कुलु, प्रभु महिमा जिय जोइ ।
जो न भजइ रघुबीर-पद जग बिधि बंचित सोइ ॥१९६॥
पटी कायर कुमति कुजाती । लोक वेद बाहिर[1] सब भाँती ॥
म कीन्ह आपन जबहीं तें । भयेउँ भुवन भूषन[2] तबहीं तें ॥
नि प्रीति सुनि बिनय सुहाई । मिलेउ बहोरि भरत-लघु भाई ॥
हि निषाद निज नाम सुबानी । सादर सकल जोहारीं रानी ॥
नि लषनसम देहिं असीसा । जिअहु सुखी सत लाख बरीसा[3] ॥
खि निषादु नगर नर नारी । भए सुखी जनु लषनु निहारी ॥
हहिं लहेउ एहि जीवन लाहू । भेंटेउ रामभद्र भरि बाहू ॥
नि निषादु निज भाग बड़ाई । प्रमुदित मन लै चलेउ लेवाई ॥
दो०—सनकारे[4] सेवक सकल, चले स्वामि रुख पाइ ।
घर तरु तर सर बाग बन, बास बनाएन्हि जाइ ॥१९७॥
गबेरपुर भरत दीख जब । भे सनेह सब अंग सिथिल तब ॥
हत दिए निषादहि लागू । जनु तनु धरे बिनय अनुरागू ॥
हि बिधि भरत सेन सब संगा । दीखि जाइ जगपावनि गंगा ॥
मघाट कहँ कीन्ह प्रनामू । भा मनु मगनु मिले जनु रामू ॥
रहिं प्रनाम नगर नर नारी । मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी ॥
रि मज्जनु माँगहिं कर जोरी । रामचन्द्र-पद-प्रीति न थोरी ॥
रत कहेउ सुरसरि तव रेनू । सकल-सुखद-सेवक-सुर धेनू ॥
रि पानि बर माँगहुँ एहू । सीय-राम-पद-सहज-सनेहू ॥
दो०—एहि बिधि मज्जनु भरतु करि गुर अनुसासन[5] पाइ ।
मातु नहानीं जानि सब, डेरा चले लेवाइ ॥१९८॥

---

१ न तो लोक ही में हमारी कुछ गणना है न वेद में ही हमारी कुछ ूँछ है २ प्रतिष्ठित ३ वर्ष ४ सनकारे, इशारा किया ५ सर में बास नाया इसके दो अर्थ हैं—(लक्षणा से) सर के किनारे पर वास, वाच्य में) सर में पड़ी हुई नावों पर वास बनाया ६ साथ लिये हुए आना।

जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोध[1] सबहीं कर लीन्हा,
सुरसेवा करि आयसु पाई। राममातु पहिं गे दोउ भाई,
चरन चाँपि कहि कहि मृदुबानी। जननी सकल भरत सनमानी
भाइहिं सौंपि मातु सेवकाई। आपु निषादहि लीन्ह बोलाई
चले सखा कर सों कर जोरे। सिथिल सरीरु सनेहु न थोरे
पूछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ। नेकु नयन-मन-जरनि जुड़ाऊ
जहँ सिय रामु लषनु निसि सोये। कहत भरे जल लोचन-कोये[2]
भरतबचन सुनि भयउ बिषादू। तुरत तहाँ लै गयेउ निषादू

दो०—जहँ सिंसुपा[3] पुनीत तरु, रघुबर किय बिश्रामु।
अति सनेह सादर भरत, कीन्हेउ दंड प्रनामु ॥१९९

कुस साथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनामप्रदच्छिन[4] जाई
चरन-रेख-रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई
कनकबिंदु[5] दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीयसम लेखे
सजल बिलोचन हृदय गलानी। कहत सखासन बचन सुबानी
श्रीहत सीयबिरह दुतिहीना[6]। जथा अवध नरनारि मलीना
पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल[7] भोगु जोगु जग जेही
ससुर भानु-कुल-भानु भुआलू। जेहि सिहात अमरावति पालू[8]
प्राननाथु रघुनाथ गोसाईं। जे जड होत सो रामबडाईं

दो०—पतिदेवता[9] सुतीय-मनि, सीय साथरी देखि।
बिहरत[10] हृदय न हहरि हर, पबि[11] तें कठिन बिसेषि ॥२

लालनजोगु[12] लषन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय-रघुबीरहिं प्रानपिआरे

१ ढूँढा, सुध ली २ पलकों पर आँसू डबडबा आये ३ शी
४ प्रदक्षिणा ५ साड़ी के सुनहरी (सितारे) गोटा ६ सीताजी के विर
कान्ति हीन है (श्री=तेज, दुति=शोभा) ७ हथेली पर ८ इन्द्र ९
ही है देवता जिसके (बहुब्रीहि०) पतिव्रता १० फटना है ११ वज्र
१२ प्यार करने योग्य।

मृदुमूरति[1] सुकुमार सुभाऊ । ताति बाउ[2] तन लाग न काऊ[3] ॥
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती । निदरे[4] कोटि कुलिस एहि छाती ॥
राम जनमि जगु कीन्ह उजागर । रूप सील सुख सब गुनसागर ॥
पुरजन परिजन गुरु पितु माता । रामसुभाउ सबहि सुखदाता ॥
बैरिउ राम बड़ाई करहीं । बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं ॥
सारद कोटि कोटि सत सेषा[5] । करि न सकहिं प्रभु गुन-गन लेखा ॥

दो०—सुखसरूप रघु-बंस-मनि, मंगल-मोद निधानु ।
ते सोवत कुस डासि महि, बिधिगति अति बलवानु ॥२०१॥

राम सुना दुखु कानन काऊ । जीवनतरु जिमि जुगवै राऊ ॥
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती । जुगवहिं जननि सकल दिन राती ॥
ते अब फिरत बिपिन पदचारी । कंद-मूल फल-फूल अहारी ॥
धिग कैकई अमंगल मूला । भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला ॥
मैं धिग धिग अघ-उदधि अभागी । सबु उतपातु भयेउ जेहि लागी ॥
कुल-कलंकु करि सृजेउ बिधाता । साइँ द्रोह मोहि कीन्ह कुमाता ॥
सुनि सप्रेम समुझाव निषादू । नाथ करिअ कत बादि बिषादू ॥
राम तुम्हहिं प्रिय तुम्ह प्रिय रामहिं । यह निरदोसु दोसु बिधि बामहिं[6] ॥

छं०—बिधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी ।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सराहन[7] रावरी ॥
तुलसी न तुम्ह सौं राम प्रीतमु कहत हौं सौंहें किए[8] ।
परिनाम मंगलु जानि अपने आनिए धीरजु हिए ॥

सो०—अंतरजामी राम, सकुच सप्रेम कृपायतन ।
चलिअ करिअ बिस्राम, यह बिचार दृढ़ आनि[10] मन ॥२०२॥

१ मृदु है मूरति जिसकी सो मृदु मूरति (बहुब्रीहि) २ वायु ३ कभी ... नीचा दिखाती है ५ शेषनाग ६ उलटा किया ७ बुद्धि ... प्रशंसा ... सौगंध खाकर १० लाकर ... सो... मिलना (भाव वा० स०)

सखा वचन सुनि उर धरि धीरा। बास[1] चले सुमिरत रघुबीरा
यह सुधि पाइ नगर-नर-नारी। चले बिलोकन आरत भारी
परदछिना[2] करि करहिं प्रनामा। देहिं कैकइहि खोरि[3] निकामा
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं। बाम बिधातहि दूषन देहीं
एक सराहहिं भरतसनेहू। कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू
निंदहि आपु सराहि निषादहि। को कहि सकै बिमोह बिषादहि
एहि बिधि राति लोगु सबु जागा। भा भिनुसार[5] गुदारा[6] लाग
गुरहि सुनाव चढ़ाइ सुहाई। नई नाव सब मातु चढ़ाई
दंड[7] चारि महँ भा सबु पारा। उतरि भरत तब सबहिं सँभार

दो०—प्रातक्रिया करि मातुपद, बंदि गुरहि सिर नाइ।
आगें किए निषादगन, दीन्हेउ कटक[8] चलाइ॥२०

कियेउ निषादनाथ अगुआई[9]। मातु पालकी सकल चलाई
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा। बिप्रन सहित गमनु गुरु कीन्ह
आपु सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू। सुमिरे लषनसहित सियरामू
गवने भरत पयादेहि पाए। कोतल संग जाहिं डोरिआए[10]
कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइअ नाथ अस्व असवार
राम पयादेहि पाय सिधाए। हमकहँ रथ गज बाजि बनाए
सिरभर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवकधरमु कठोर
देखि भरतगति, सुनि मृदुबानी। सब सेवकगन गरहिं गलानी

दो०—भरत तीसरे पहर कहँ, कीन्ह प्रबेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय, उमगि उमगि अनुराग॥२०

झलका[11] झलकत पायन्ह कैसें। पंकजकोस[12] ओसकन जैसें

---

१ (निवास) डेरा २ (प्रदक्षिणा) परिक्रमा ३ दोष ४ (निकम
या इच्छा भर के ५ सवेरा ६ पार उतरने लगे ७ घड़ी ८ सेना ९
प्रदर्शन १० रस्सी पकड़े हुए ११ छाले १२ कमल के फूल
भीतरी भाग।

रत पयागेहि आए आजू । भयेउ दुखित सुनि सकल समाजू ॥
नारि लीन्हि सब लोग नहाए । कीन्ह प्रनामु त्रिवेनिहि आए ॥
विधि सितासित[1] नीर नहाने । दिए दान महिसुर[2] सनमाने ॥
खत स्यामल धवल हिलोरे । पुलकि सरीर भरत कर जोरे ॥
सकल-काम प्रद तीरथराऊ । बेदविदित जग प्रगट प्रभाऊ ॥
माँग* भीख त्यागि निज धरमू । आरत काह न करै कुकरमू ॥
अस जिय जानि सुजान सुदानी । सफल करहिं जग जाचक बानी[3] ॥

दो०—अरथ न धरम न कामरुचि गति न चहउँ निरबान[4] ।
जनम जनम रति रामपद यह बरदानु न आन[5] ॥२०५॥

जानहिं राम कुटिल करि मोही । लोग कहउ गुर साहिब द्रोही ॥
सीता राम-चरन रति मोरें । अनुदिन[6] बढ़ै अनुग्रह[7] तोरें ॥
जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ । जाँचत जलु पवि पाहन[8] डारउ ॥
चातक रटनि घटे घटि जाई । बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई ॥
कनकहि[9] बान[10] चढ़ै जिमि दाहें । तिमि प्रियतम पद नेह निबाहें ॥
भरत-बचन सुनि माँझ त्रिबेनी । भइ मृदुबानि सुमंगल-देनी ॥
तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू । राम चरन अनुराग-अगाधू ॥
बादि गलानि करहु मन माहीं । तुम्ह सम रामहिं कोउ प्रिय नाहीं ॥

दो०—तनु पुलकेउ हिय हरषु सुनि, बेनिबचन अनुकूल ।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल ॥२०६॥

प्रमुदित[11] तीरथ राज-निवासी । बैखानस† बटु गृही उदासी ॥
कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा । भरत सनेहु सीलु सुचि साँचा ॥
सुनत राम-गुन ग्राम सुहाए । भरद्वाज मुनिवर पहिं आए ॥

---

*माँगना क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध है †वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी गृहस्थ और उदासीन ।

१ सफेद श्याम २ ब्राह्मण ३ भिक्षुक का प्रश्न ४ मोक्ष ५ दूसरा ६ दिन प्रतिदिन ७ कृपा ८ वज्र और पत्थर ९ सोनेमें १० वर्ण, आव ११ प्रसन्न ।

सखा वचन सुनि उर धरि धीरा । बास[1] चले सुमिरत रघुबीरा ॥
यह सुधि पाइ नगर-नर-नारी । चले बिलोकन आरत भारी ॥
परदछिना[2] करि करहिं प्रनामा । देहिं कैकइहि खोरि[3] निकामा[4] ॥
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं । बाम बिधातहि दूषन देहीं ॥
एक सराहहिं भरतसनेहू । कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू ॥
निंदहिं आपु सराहि निषादहि । को कहि सकै बिमोह बिषादहि ॥
एहि बिधि राति लोगु सबु जागा । भा भिनुसार[5] गुदारा[6] लागा ॥
गुरहिं सुनाव चढ़ाइ सुहाईं । नईं नाव सब मातु चढ़ाईं ॥
दंड[7] चारि महँ भा सबु पारा । उतरि भरत तब सबहिं सँभारा ॥

दो०—प्रातक्रिया करि मातुपद, बंदि गुरहिं सिर नाइ ।
आगें किए निषादगन, दीन्हेउ कटक[8] चलाइ ॥२०३॥

कियेउ निषादनाथ अगुआईं[9] । मातु पालकी सकल चलाईं ॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा । बिप्रन सहित गमनु गुरु कीन्हा ॥
आप सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू । सुमिरे लषनसहित सियरामू ॥
गवने भरत पयादेहि पाए । कोतल संग जाहिं डुरिआए[10] ॥
कहहिं सुसेवक बारहिं बारा । होइअ नाथ अस्व असवारा ॥
राम पयादेहि पाय सिधाए । हमकहँ रथ गज बाजि बनाए ॥
सिरभर जाउँ उचित अस मोरा । सब ते सेवकधरमु कठोरा ॥
देखि भरतगति, सुनि मृदुबानी । सब सेवकगन गरहिं गलानी ॥

दो०—भरत तीसरे पहर कहँ, कीन्ह प्रबेसु प्रयाग ।
कहत राम सिय राम सिय, उमगि उमगि अनुराग ॥२०४॥

झलका[11] झलकत पायन्ह कैसे । पंकजकोस[12] ओसकन जैसे ॥

१ (निवास) डेरा २ (प्रदक्षिणा) परिक्रमा ३ दोष ४ (निष्कर... या इच्छा भर के ५ सवेरा ६ पार उतरने लगे ७ घड़ी ८ सेना ९ प... प्रदर्शन १० रस्सी पकड़े हुए ११ छाले १२ कमल के फूल, भीतरी भाग ।

मातु-कुमत[1] बढ़ई अघमूला तेहि हमार हित कीन्ह बसूला॥
कलि-कुकाठ[2] कर कीन्ह कुजन्त्रू[3]। गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमन्त्रू॥
मोहि लगि यह कुठाट[4] तेहि ठाटा[5] घालेसि सब जग बारह बाटा
मिटइ कुजोग[6] राम फिरि आए। बसहि अवध नहिं आन उपाए॥
भरतबचन सुनि मुनि सुख पाई। सबहि कीन्हि बहु भाँति बड़ाई।
तात करहु जनि सोचु बिसेखी। सब दुख मिटिहि रामपग देखी॥

दो०—करि प्रबोध मुनिबर कहेउ अतिथि[8] प्रेमप्रिय होहु।
कन्द मूल फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु २१३।

सुनि मुनिबचन भरत हिय सोचू। भयेउ कुअवसर कठिन सँकोचू॥
जानि गरुइ[10] गुरु गिरा बहोरी। चरन बंदि बोले कर जोरी॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परमधरम यहु नाथ हमारा॥
भरतबचन मुनिबर मन भाये सुचि सेवक सिष[11] निकट बुलाए॥
चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई॥
भलेहि नाथ कहि तिन्ह सिर नाए प्रमुदित निज निज काज सिधाए॥
मुनिहि सोचु पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिअ जस देवता॥
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आईं। आयसु होइ सो करहि गोसाईं॥

कीरति विधु तुम्ह कीन्हि अनूपा । जहँ बस राम प्रेम-मृग-रूपा*।
तात गलानि करहु जिय जाएँ । डरहु दरिद्रहि पारस पाएँ।
सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं । उदासीन तापस बन रहहीं।
सब साधन[१] कर सुलभ सुहावा । लषन-राम-सिय-दरसनु पावा।
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा । सहित प्रयाग सुभाग हमारा।
भरत धन्य तुम्ह जग जसु जयेऊ । कहि अस प्रेम-मगन मुनि भयेऊ।
सुनि मुनिबचन सभासद हरषे । साधु सराहि सुमन सुर बरषे।
धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा । सुनि सुनि भरत मगन अनुरागा।

दो०—पुलकगात हिय राम सिय, सजल सरोरुह नयन ।
करि प्रनाम मुनिमंडलिहि, बोले गदगद बयन ॥२११॥

मुनिसमाजु अरु तीरथराजू । साँचिहु सपथ अघाइ अकाजू।
एहि थल जौं कछु कहिअ बनाई । एहि सम अधिक न अघ अधमाई।
तुम्ह सरबग्य[३] कहउँ सतिभाऊ । उर-अंतर-जामी रघुराऊ।
मोहि न मातु करतब कर सोचू । नहिं दुख जिय जग जानहि पोचू।
नाहिंन डरु बिगरहिं परलोकू । पितुहु मरन कर मोहि न सोकू।
सुकृत सुजस भरि भुवन सुहाए । लछिमन राम सरिस सुत पाए।
रामबिरह तजि तन छनभंगू । भूप सोच कर कवन प्रसंगू।
राम लषन सिय बिनु पग पनहीं । करि मुनिबेष फिरहिं बन बनहीं।

दो०—अजिन[७] बसन, फल असन, महि सयन डासि कुस पात।
बसि तरुतर नित सहत हिम, आतप बरषा बात। ११२॥

एहि दुसदाह दहइ दिन छाती । भूख न बासर नींद न राती।
एहि कुरोग करि औषधि नाहीं । सोधेउ[९] सकल बिस्व मनमाहीं।

---

*यहाँ — रामप्रेम रूप उपमेय और विधु एव... क कारण रूपकालंकार है।
... आदि २ नीचता ३ सब जानने वाले ...
७ मृगचर्म ८ घाम ९ खोजा।

मातु कुमत[1] बढ़ई अघमूला । तेहि हमार हित कीन्ह बसूला ॥
कलि कुकाठ[2] कर कीन्ह कुजन्त्रू[3] । गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमन्त्रू ॥
मोहि लगि यह कुठाट[4] तेहि ठाटा । घालेसि सब जग बारह-बाटा ॥
मिटइ कुजोग[5] राम फिरि आए । बसहि अवध नहि आन उपाए ॥
भरतबचन सुनि मुनि सुख पाई । सबहि कीन्हि बहु भाँति बड़ाई ॥
तात करहु जनि सोचु बिसेखी । सब दुख मिटिहिं रामपग देखी ॥

दो०—करि प्रबोध मुनिबर कहेउ, अतिथि[9] प्रेमप्रिय होहु ।
कंद मूल फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु ॥२१३॥

सुनि मुनिबचन भरत हिय सोचू । भयेउ कुअवसर कठिन सँकोचू ॥
जानि गरुइ[10] गुरु गिरा बहोरी । चरन बंदि बोले कर जोरी ॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा । परम धरम यहु नाथ हमारा ॥
भरतबचन मुनिवर मन भाये । सुचि सेवक सिष[11] निकट बुलाए ॥
चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई । कंद मूल फल आनहु जाई ॥
भलेहि नाथ कहि तिन्ह सिर नाए । प्रमुदित निज निज काज सिधाए ॥
मुनिहि सोचु पाहुन बड़ नेवता । तसि पूजा चाहिअ जस देवता ॥
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आईं । आयसु होइ सो करहि गोसाईं ॥

दो०—राम बिरह ब्याकुल भरतु, सानुज सहित समाज ।
पहुनाई करि हरहु स्रम, कहा मुदित मुनि राज ॥२१४॥

रिधि सिधि सिर धरि मुनिबर बानी । बड़ भागिन आपुहि अनुमानी ॥
कहहिं परसपर सिधि समुदाई । अतुलित[12] अतिथि राम लघुभाई ॥
मुनिपद बंदि करिअ सोइ आजू । होइ सुखी सब राजसमाजू ॥
अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना । जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना ॥

---

१ माता की बुरी सम्मति २ पाप रूपी बुरे काठ (बबूल) का ३ तन्त्र शास्त्र का प्रयोग या कोल्हू ४ कुयोग ५ सजाया ६ नष्ट किया ७ तितर बितर ८ दुःख संयोग ९ मेहमान १० भारी (मानने योग्य) ११ शिष्य १२ अतोल ।

कीरति बिधु तुम्ह कीन्हि अनूपा । जहँ बस राम प्रेम-मृग-रूपा* ॥
तात गलानि करहु जिय जाएँ । डरहु दरिद्रहि पारस पाएँ ॥
सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं । उदासीन तापस बन रहहीं ॥
सब साधन[1] कर सुलभ सुहावा । लषन-राम-सिय दरसनु पावा ॥
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा । सहित प्रयाग सुभाग हमारा ॥
भरत धन्य तुम्ह जग जसु जयेऊ । कहि अस प्रेम-मगन मुनि भयेऊ ॥
सुनि मुनिबचन सभासद हरषे । साधु सराहि सुमन सुर बरषे ॥
धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा । सुनि सुनि भरत मगन अनुरागा ॥

दो०—पुलकगात हिय राम सिय, सजल सरोरुह नयन ।
करि प्रनाम मुनिमंडलिहि, बोले गदगद बयन ॥२११॥

मुनिसमाजु अरु तीरथराजू । साँचिहु सपथ अघाइ अकाजू ॥
एहि थल जौं कछु कहिअ बनाई । एहि सम अधिक न अघ अधमाई[2] ॥
तुम्ह सरबग्य[3] कहउँ सतिभाऊ । उर-अंतर-जामी रघुराऊ ॥
मोहि न मातु करतब कर सोचू । नहिं दुख जिय जग जानहि पोचू[4] ॥
नाहिंन डरु बिगरहिं परलोकू । पितुहु मरन कर मोहि न सोकू ॥
सुकृत सुजस भरि भुवन सुहाए । लछिमन-राम सरिस सुत पाए ॥
रामबिरह तजि तन छनभंगू[5] । भूप सोच कर कवन प्रसंगू ॥
राम-लषन-सिय बिनु पग पनहीं[6] । करि मुनिबेष फिरहिं बन बनहीं ॥

दो०—अजिन[7] बसन, फल असन, महि सयन डासि कुस पात ।
बसि तरुतर नित सहत हिम, आतप[8] बरषा बात ॥ ११२॥

एहि दुखदाह दहइ दिन छाती । भूख न बासर नींद न राती ॥
एहि कुरोग करि औषधि नाहीं । सोधेउ[9] सकल बिस्व मनमाहीं ॥

*यहाँ भरत कीर्ति रामप्रेम रूप उपमेय और विधु एवं मृगरूप उपमानों में अभेद दिखाने के कारण रूपकालंकार है ।

१ व्रत नियम संयम आदि २ नीचता ३ सब जानने वाले ४ बुरा ५ नाशवान ६ जूता ७ मृगचर्म ८ घाम ९ खोजा ।

मातु कुमत[1] बढई अघमूला । तेहि हमार हित कीन्ह बसूला ॥
कलि-कुकाठ[2] कर कीन्ह कुजन्त्रू[3] । गाडि अवधि पढि कठिन कुमन्त्रू ॥
मोहि लगि यह कुठाट[4] तेहि ठाटा[5] घालेसि[6] सब जग बारह-बाटा[7] ।
मिटइ कुजोग[8] राम फिरि आए । बसहि अवध नहिं आन उपाए ॥
भरतबचन सुनि मुनि सुख पाई । सबहि कीन्हि बहु भांति बडाई ।
तात करहु जनि सोचु बिसेखी । सब दुख मिटिहिं रामपग देखी ॥

दो०—करि प्रबोध मुनिवर कहेउ, अतिथि[9] प्रेमप्रिय होहु ।
कद मूल फल फूल हम देहि लेहु करि छोहु ॥२१३॥

सुनि मुनिबचन भरत हिय सोचू । भयेउ कुअवसर कठिन सँकोचू ॥
जानि गरुइ[10] गुरु गिरा बहोरी । चरन बंदि बोले कर जोरी ॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा । परम धरम यहु नाथ हमारा ॥
भरतबचन मुनिवर मन भाये सुचि सेवक सिष[11] निकट बुलाए ॥
चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई । कद मूल फल आनहु जाई ॥
भलेहि नाथ कहि तिन्ह सिर नाए प्रमुदित निज निज काज सिधाए ।
मुनिहि सोचु पाहुन बड नेवता । तसि पूजा चाहिअ जस देवता ॥
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आईं । आयसु होइ सो करहिं गोसाईं ॥

दो०—राम बिरह ब्याकुल भरतु, सानुज सहित समाज ।
पहुनाई करि हरहु स्रम, कहा मुदित मुनि राज ॥२१४॥

रिधि सिधि सिर धरि मुनिबर बानी । बड भागिनि आपुहि अनुमानी ॥
कहहिं परसपर सिधि समुदाई । अतुलित[12] अतिथि राम लघुभाई ।
मुनिपद बंदि करिअ सोइ आजू । होइ सुखी सब राजसमाजू ॥
अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना । जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना ॥

---

1 माता की बुरी सम्मति 2 पाप रूपी बुरे काठ (बबूल) का 3 तन्त्र शास्त्र का प्रयोग या कोल्हू 4 कुयोग 5 सजाया 6 नष्ट किया 7 तितर बितर 8 बुरा संयोग 9 मेहमान 10 भारी (मानने योग्य) 11 शिष्य 12 अतोल ।

भरतसरिस को राम सनेही । जगु जप राम, राम जप जेही
दो॰—मनहुँ न आनिअ अमरपति, रघुवर-भगत-अकाजु ।
अजसु लोक, परलोक दुख, दिन दिन सोकसमाजु ॥२१९॥
सुनु सुरेस ! उपदेसु हमारा । रामहि सेवक परम पियारा
मानत सुख सेवक-सेवकाई । सेवकबैर बैरु अधिकाई
जद्यपि सम, नहिं राग न रोषू । गहहि न पापपूनु गुन दोषू
करम प्रधान विस्व करि राखा । जो जस करइ सो तस फलु चाखा
†तदपि करहिं सम-विषम विहारा । भगत अभगत हृदय अनुसारा
अगुन[1] अलेख[2] अमान[3] एकरस[4] । रामु सगुन[5] भए भगत प्रेम बस
राम सदा सेवक रुचि राखी । वेद-पुरान साधु सुर साखी
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई । करहु भरत पद प्रीति सुहाई
दो॰—राम-भगत पर हित निरत[6], परदुख दुखी दयाल ।
भगतसिरोमनि भरत ते, जनि डरपहु सुरपाल ॥२२०॥
सत्यसंध प्रभु सुर-हित-कारी । भरत राम-आयसु अनुसारी
स्वारथविवस बिकल तुम्ह होहू । भरतु दोषु नहि राउर मोहू[7]
सुनि सुरवर सुर-गुर-वर-बानी । भा प्रमोदु मन मिटी गलानी

स्नानादि से देर में आये, इधर राजा ने द्वादशी बीती जान ब्राह्मणों के सलाह से पारण कर लिया । ऋषि ने यह जान कर क्रोध कर जटा से राक्षसी पैदा की । वह जैसे ही राजा को खाने दौड़ी वैसे ही चक्रसुदर्शन ने उसे मार डाला और ऋषि का पीछा किया । उनको किसी देवता ने शरण न दी । अन्त में राजा ने ही चक्रसुदर्शन को निवारण कर ऋषि को बचाया और भोजन कराके आप खाया । इस झगड़े में एक वर्ष का समय लगा ।

† भक्तों की इच्छा के अनुसार सम विषम विहार अर्थात् ऊपर के नियमों का उल्लंघन कर देते हैं ।

१ तीनों गुणों से रहित २ देखने में न आवे ३ मान रहित ४ एक से ५ साकार ६ परोपकार में लगे हुए ७ अज्ञान ।

बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ॥
एहि विधि भरत चले मग जाहीं। दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं॥
जबहिं रामु कहि लेहिं उसासा। उमगत[1] प्रेम मनहुँ चहुँ पासा॥
द्रवहिं[2] बचन सुनि कुलिस पषाना[3] पुरजन प्रेम न जाइ बखाना॥
बीच बास करि जमुनहि आए। निरखि नीरु लोचन जल छाए॥

दो०—रघुबर-बरन[4] बिलोकि बर, बारि समेत समाज।
होत मगन बारिधि बिरह[5], चढे बिबेक-जहाज॥२२१॥

जमुनतीर तेहि दिन करि बासू। भयेउ समयसम सबहि सुपासू[6]॥
रातिहि घाट घाट की तरनी। आईं अगनित जाहिं न बरनी॥
प्रात पार भये एकहि खेवा। तोषे राम सखा की सेवा॥
चले नहाइ नदिहि सिरु नाई। साथ निषादनाथ दोउ भाई॥
आगें मुनि बर बाहन आछे। राज समाज जाइ सब पाछे॥
तेहि पाछे दोउ बंधु पयादे। भूषन बसन बेष सुठि सादे॥
सेवक सुहृद सचिवसुत साथा। सुमिरत लखनु सीय रघुनाथा॥
जहँ जहँ राम-बास बिस्रामा। तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा॥

दो०—मगबासी नरनारि सुनि, धाम काम तजि धाइ।
देखि सरूप सनेह बस मुदित जनमफलु पाइ॥२२२॥

कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं। राम लखनु सखि होहिं कि नाहीं॥
बय बपु[7] बरन रूपु सोइ आली। सीलु सनेहु सरिस सम चाली॥
बेषु न सो, सखि! सीय न संगा। आगें अनी[8] चली चतुरंगा॥
नहिं प्रसन्नमुख मानस[9] खेदा। सखि संदेह होइ एहि भेदा॥
तासु तरक तियगन मनमानी। कहहिं सकल तोहि सम न सयानी॥
तेहि सराहि बानी फुर पूजी। बोली मधुर बचन तिय दूजी॥
कहि सप्रेम सब कथा प्रसंगू। जेहि बिधि राम राजु-रस भंगू[10]॥

---

१ उमड़ता है २ पिघलते हैं ३ (पाषाण) पत्थर ४ राम के रंग का (नीला) ५ वियोग रूपी समुद्र में ६ सुविधा ७ शरीर ८ सेना ९ मानसिक १० राम के राज्य तिलक के आनन्द का बिगाड़।

भरतसरिस को राम सनेही। जगु जप राम, राम जप जेही॥
दो०—मनहुँ न आनिअ अमरपति, रघुवर-भगत-अकाजु।
अजसु लोक, परलोक दुख, दिन दिन सोकसमाजु २१९।
सुनु सुरेस! उपदेसु हमारा। रामहिं सेवक परम पियारा॥
मानत सुख सेवक-सेवकाई। सेवकवैर वैरु अधिकाई॥
जद्यपि सम, नहिं राग न रोषू। गहहिं न पापपूनु गुन दोषू॥
करम प्रधान विस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥
†तदपि करहिं सम विषम विहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥
अगुन[1] अलेप[2] अमान[3] एकरस[4]। रामु सगुन[5] भए भगत प्रेम बस॥
राम सदा सेवक रुचि राखी। वेद पुरान साधु सुर साखी॥
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई॥
दो०—राम भगत पर हित-निरत[6], परदुख दुखी दयाल।
भगतसिरोमनि भरत ते, जनि डरपहु सुरपाल॥२२०॥
सत्यसंध प्रभु सुर-हित-कारी। भरत राम-आयसु-अनुसारी॥
स्वारथविवस विकल तुम्ह होहू। भरतु दोषु नहि राउर मोहू[7]॥
सुनि सुरवर सुर-गुर-वर-बानी। भा प्रमोदु मन मिटी गलानी॥

स्नानादि से देर में आये, इधर राजा ने द्वादशी बीती जान ब्राह्मणों की सलाह से पारण कर लिया। ऋषि ने यह जान कर क्रोध कर जटा से राक्षसी पैदा की। यह जैसे ही राजा को खाने दौड़ी वैसे ही चक्रसुदर्शन ने उसे मार डाला और ऋषि का पीछा किया। उनको किसी देवता ने शरण न दी। अन्त में राजा ने ही चक्रसुदर्शन को निवारण कर ऋषि को बचाया और भोजन कराके आप खाया। इस झगड़े में एक वर्ष का समय लगा।

† भक्तों की इच्छा के अनुसार सम विषम विहार - अर्थात् ऊपर के नियमों का उल्लंघन कर देते हैं।

१ तीनों गुणों से रहित २ देखने में न आवे ३ मान रहित ४ एक से ५ साकार ६ परोपकार में लगे हुए ७ अज्ञान।

बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ । लगे सराहन भरत सुभाऊ ॥
एहि बिधि भरत चले मग जाहीं । दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं ॥
जबहिं रामु कहि लेहिं उसासा । उमगत[1] प्रेम मनहुँ चहुँ पासा ॥
द्रवहिं[2] बचन सुनि कुलिस पषाना[3] पुरजन पेम न जाइ बखाना ॥
बीच बास करि जमुनहिं आए । निरखि नीरु लोचन जल छाए ॥

दो०—रघु-बर बरन[4] बिलोकि बर, बारि समेत समाज ।
होत मगन बारिधि बिरह[5], चढ़े बिबेक-जहाज ॥२२१॥

जमुनतीर तेहि दिन करि बासू । भयेउ समयसम सबहिं सुपासू ॥
रातिहि घाट घाट की तरनी । आईं अगनित जाहिं न बरनी ॥
प्रात पार भये एकहि खेवा । तोषे रामसखा की सेवा ॥
चले नहाइ नदिहि सिरु नाई । साथ निषादनाथ दोउ भाई ॥
आगें मुनि बर बाहन आछे । राज समाज जाइ सब पाछे ॥
तेहि पाछे दोउ बंधु पयादे । भूषन बसन बेष सुठि सादे ॥
सेवक सुहृद सचिवसुत साथा । सुमिरत लषनु सीय रघुनाथा ॥
जहँ जहँ राम-बास बिस्रामा । तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा ॥

दो०—मगबासी नरनारि सुनि, धाम काम तजि धाइ ।
देखि सरूप सनेह बस मुदित जनमफलु पाइ ॥२२२॥

कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं । राम लषनु सखि होहिं कि नाहीं ॥
बय बपु[7] बरन रूपु सोइ आली । सीलु सनेहु सरिस सम चाली ॥
बपु न सो, सखि सीय न संगा । आगें अनी[8] चली चतुरंगा ॥
नहिं प्रसन्नमुख मानस[9] खेदा । सखि संदेह होइ एहि भेदा ॥
तासु तरक तियगन मनमानी । कहहिं सकल तोहि सम न सयानी ॥
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी । बोली मधुर बचन तिय दूजी ॥
कहि सप्रेम सब कथा प्रसंगू । जेहि बिधि राम राजु रस-भंगू[10] ॥

---

१ उमड़ता है २ पिघलते हैं ३ (पाषाण) पत्थर ४ राम के रंग का (नीला) ५ वियोग रूपी समुद्र में ६ सुविधा ७ शरीर ८ सेना ९ मानसिक १० राम के राज्य तिलक के आनन्द का बिगाड़ ।

भरतहि वहुरि सराहन लागी। सील सनेह सुभाय सुभागी ॥
दो०—चलत पयादे खात फल, पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहिं, भरतसरिस को आजु ॥२२३
भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख-दूषन हरनू ॥
जो कछु कहब थोर सखि सोई। रामबधु अस काहे न होई ॥
हम सब सानुज भरतहि देखे। भइन्ह धन्य जुवतीजन लेखे[१] ॥
सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं। कैकेइ-जननि-जोगु सुतु नाहीं ॥
कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिन। बिधि सबु कीन्ह हमहिं जो दाहिन॥
कहँ हम लोक-बद-बिधि हीनी। लघुतिय कुल-करतूति मलीनी॥
बसहि कुदेस कुगाँव कुनामा। कहँ, एह दरसु पुन्य परिनामा ॥
अस अनंदु अचिरजु प्रति ग्रामा। जनु मरुभूमि[२] कलपतरु जामा॥
दो०—भरत दरसु देखत खुलेउ, मग लोगन्ह कर भागु।
जनु सिंघल बासिन्ह भयेउ, बिधि बस सुलभ प्रयागु ॥२२४॥
निज गुन सहित राम-गुन-गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा॥
तीरथ मुनि आस्रम सुरधामा। निरखि[३] निमज्जहिं[४] करहिं प्रनामा॥
मिलहिं किरात कोल बनबासी। बैखानस बटु जती उदासी ॥
करि प्रनामु पूछहिं जेहि तेही। केहि बन लषनु राम बैदेही ॥
ते प्रभु समाचार सब कहहीं। भरतहिं देखि जनम फलु लहहीं॥
जे जन कहहिं "कुसल" हम देखे"। ते प्रिय राम लषन-सम लेखे ॥
एहि बिधि बूझत सबहिं सुबानी। सुनत राम बन बास-कहानी ॥
दो०—तेहि बासर बसि प्रात ही, चले सुमिरि रघुनाथ।
रामदरस की लालसा, भरत सरिस सब साथ ॥२२५॥
मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू ॥
भरतहि सहित समाज उछाहू। मिलहहिं रामु मिटिहि दुखदाहू ॥

१ अन्य स्त्रियों के हिसाब मे २ मारवाड़, मरुस्थल ३ देख कर
४ स्नान करते हैं ५ अच्छी तरह।

करत मनोरथ जस जिय जाके। जाहि सनेहसुरा[1] सब छाके॥
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिहवल बचन[2] प्रेमबस बोलहिं॥
राम सखा तेहि समय देखावा। सैलसिरोमनि सहज सुहावा॥
जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ बीरा॥
देखि करहिं सब दंड प्रनामा। कहि जय जानकि जीवन रामा॥
प्रेम मगन अस राज समाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू॥

दो०—भरत प्रेमु तेहि समय जस, तस कहि सकइ न सेषु।
*कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह-मम मलिन जनेषु॥२२६

सकल सनेह सिथिल रघुबर के। गए कोस दुइ दिनकर ढरके[3]॥
जल थल देखि बसे, निसि बीते। कीन्ह गवनु रघुनाथ पिरीते॥
उहाँ रामु रजनी अवसेषा[4]। जागे सीय सपन अस देखा॥
सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग ताप तन ताए[5]॥
सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखीं सासु आन अनुहारी[6]॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोच बस सोच बिमोचन॥
लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई॥
अस कहि बन्धु समेत नहाने। पूजि पुरारि[7] साधु सनमाने॥

छंद—सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भये।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे सकल प्रभु आस्रम गए॥
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचुकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे॥

सो०—सुनत सुमंगल बैन, मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल॥२२७॥

---

१ स्नेह रूपी मद २ लड़खड़ाती बात ३ दिन ढले ४ थोड़ी रात रहे ५ ताप हुए ६ और ही भाँति ७ (पुर=त्रिपुर + अरि=बैरी) महादेव।
*कवि को ऐसा दुस्तर है जैसा कि अहंकार से मलिन मनुष्यों को ब्रह्म सुख।

भरतहि बहुरि सराहन लागी । सील सनेह सुभाय सुभागी
दो०—चलत पयादे खात फल, पिता दीन्ह तजि राजु ।
जात मनावन रघुबरहिं, भरतसरिस को आजु ॥९२
भायप भगति भरत आचरनू । कहत सुनत दुख दूषन हरनू
जो कछु कहब थोर सखि सोई । रामबंधु अस काहे न होई
हम सब सानुज भरतहि देखे । भइन्ह धन्य जुबतीजन लेखे[1]
सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं । कैकेइ-जननि-जोगु सुतु नाहीं
कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिन । बिधि सबु कीन्ह हमहिं जो दाहिन
कहँ हम लोक-बेद-बिधि हीनी । लघुतिय कुल-करतूति मलीन
बसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा । कहँ एह दरसु पुन्य परिनामा
अस अनंदु अचिरजु प्रति ग्रामा । जनु मरुभूमि[2] कलपतरु जा
दो०—भरत दरसु देखत खुलेउ, मग लोगन्ह कर भागु ।
जनु सिंघल बासिन्ह भयेउ, बिधि बस सुलभ प्रयागु ॥२
निज गुन-सहित राम गुन-गाथा । सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथ
तीरथ मुनि आस्रम सुरधामा । निरखि[3] निमज्जहिं[4] करहिं प्रना
मिलहिं किरात कोल बनबासी । बैखानस बटु जती उदासी
करि प्रनामु पूछहिं जेहि तेही । केहि बन लषनु राम बैदेही
ते प्रभु समाचार सब कहहीं । भरतहिं देखि जनम-फलु लहहिं
जे जन कहहिं "कुसल" "हम देखे" । ते प्रिय राम-लषन-सम-लेखे
एहि बिधि बूझत सबहिं सुबानी । सुनत राम बन-बास-कहानी
दो०—तेहि बासर बसि प्रात ही, चले सुमिरि रघुनाथ ।
रामदरस की लालसा, भरत सरिस सब साथ ॥२
मंगल सगुन होहिं सब काहू । फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू
भरतहि सहित समाज उछाहू । मिलिहहिं रामु मिटिहि दुखदाहू

---

१ अन्य स्त्रियों के हिसाब में २ मारवाड़, मरुस्थल ३ देख
४ स्नान करते हैं ५ अच्छी तरह ।

करत मनोरथ जस जिय जाके। जाहिं सनेहसुरा[1] सब छाके॥
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिहवल बचन[2] प्रेमबस बोलहिं॥
राम सखा तेहि समय देखावा। सैलसिरोमनि सहज सुहावा॥
जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ बीरा॥
देखि करहिं सब दंड प्रनामा। कहि जय जानकि जीवन रामा॥
प्रेम मगन अस राज समाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू॥

दो०—भरत प्रेमु तेहि समय जस, तस कहि सकइ न सेषु।
*कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु, अह मम मलिन जनेषु॥२२६॥

सकल सनेह सिथिल रघुबर कें। गए कोस दुइ दिनकर ढरकें[3]॥
जल थल देखि बसे, निसि बीते। कीन्ह गवनु रघुनाथ पिरीते॥
उहाँ रामु रजनी अवसेषा[4]। जागे सीय सपन अस देखा॥
सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग-ताप तन ताए[5]॥
सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखीं सासु आन अनुहारी[6]॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोच बस सोच बिमोचन॥
लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई॥
अस कहि बन्धु समेत नहाने। पूजि पुरारि[7] साधु सनमाने॥

छंद—सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उत्तर दिसि देखत भये।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे सकल प्रभु आस्रम गए॥
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचुकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे॥

सो०—सुनत सुमंगल बैन, मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल।२२७॥

---

१ स्नेह रूपी मद २ लड़खड़ाती बातें ३ दिन ढले ४ थोड़ा रात रहे ५ ताये हुए ६ और ही भाँति ७ (पुर=त्रिपुर+अरि=वैरी) महादेव।
*कवि को ऐसा दुस्तर है जैसा कि अहंकार से मलिन मनुष्यों को ब्रह्म सुख।

बहुरि सोच बस भे सियरवनू । कारन कवन भरत आगमनू ॥
एक आइ अस कहा बहोरी । सेन संग चतुरंग न थोरी ॥
सो सुनि रामहिं भा अति सोचू । इत पितुबच उत बंधु सँकोचू ॥
भरत सुभाउ समुझि मन माहीं । प्रभुचित हित थिति[1] पावत नाहीं ॥
समाधान तब भा यह जाने । भरतु कहे महँ साधु सयाने ॥
लषनु लखेउ प्रभु हृदय खँभारू[2] । कहत समय सम नीति बिचारू ॥
बिनु पूँछे कछु कहउँ गोसाईं । सेवकुसमय न ढीठ ढिठाई ॥
तुम्ह सरबग्य सिरोमनि स्वामी । आपनि समुझि कहउँ अनुगामी ॥

दो०—नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील-सनेह निधान ।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय जानिअ आपु समान ॥२२८॥

बिषयी जीव पाइ प्रभुताई । मूढ़ मोह बस होहिं जनाई[3] ॥
भरतु नीतिरत साधु सुजाना । प्रभु पद-प्रेम सकल जगु जाना ॥
तेऊ आजु राजपदु पाई । चले धरम मरजाद मेटाई ॥
कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी । जानि राम बनबास एकाकी[4] ॥
करि कुमन्त्रु[5] मन साजि समाजू । आए करइ अकंटक[6] राजू ॥
कोटि प्रकार कलपि[7] कुटिलाई । आए दलु बटोरि दोउ भाई ॥
जौं जिय होति न कपट कुचाली । केहि सोहाति रथ-बाजि गजाली[8] ॥
भरतहि दोष देइ को जाए[9] । जग बौराइ राजपद पाए ॥

दो०—*ससि गुर-तिय-गामी, नहुषु चढ़ेउ भूमि-सुर-जान ।
†लोकबेद तें बिमुख भा अधम न †बेन समान ॥२२९॥

---

१ (स्थिति) २ खलबली ३ अपने को दिखाते हैं अर्थात् घमंड करते हैं ४ अकेला, असहाय ५ षड्यन्त्र ६ निर्विघ्न ७ सोचकर ८ हाथियों का समूह ९ व्यर्थ ।

*चन्द्रमा ने त्रिलोकी को जीतकर राजसूय यज्ञ किया और अपनी गुरुपत्नी को हर लिया । देवताओं ने भी चन्द्रमा का ही पक्ष लिया । तब ब्रह्मा ने बीच में पड़ तारा बृहस्पति को दिला दी और चन्द्र का पुत्र बुध, जो तारा से पैदा था उसी के यहाँ रहा । बुध के पुत्र पुरूरवा से चन्द्रवंशी राजाओं की उत्पत्ति हुई ।

†स्वायम्भु मनु के वंशजों में राजा अंग का पुत्र बेनु जन्म से ही दुष्ट-

‡ सहसबाहु × सुरनाथ + त्रिसकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपुरिन रंच न राखब काऊ॥
एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे राम जानि असहाई॥

और उपद्रवी था। पिता दुखी हो वन को चले गये। यह राज्य पा, मदान्ध हो गया, ऋषि मुनि आदि से हठात ईश्वरोपासना छुड़ाकर अपनी पूजा कराने को बाधित करने लगा। मुनियों ने समझाया पर ध्यान नहीं दिया, अन्त में उन्हों ने भस्म कर दिया।

‡ माामवती कृतवीर्य के पुत्र सहस्रबाहु अर्जुन ने दत्तात्रेय की सेवा कर सहस्र हाथ पाये। इसकी राजधानी माहिष्मती नर्मदा के किनारे पर थी। एक बार इसने रावण को बाँध लिया था।

एक समय यमदग्नि ने राजा सहस्रबाहु का—जो शिकार को आया हुआ था ससैन्य स्वागत किया। ऋषि का वैभव देख राजा आश्चर्य में आगया। यह सब काम धेनु का पराक्रम है ऐसा जान कर उसे मांगने लगा। ऋषि के न देने पर उन्हें मार डाला। कामधेनु उसमें छूट कर स्वर्ग चली गई और इधर ऋषि के पुत्र परशुराम ने युद्ध में सहस्रबाहु को मार कर पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रिय-रहित कर दिया।

× एक बार इन्द्र ऐरावत हाथी पर बैठ कर जा रहे थे। राह में दुर्वासा ऋषि ने स्वर्गीय पुष्पों की माला दी। इन्होंने अभिमान वश हाथी की गर्दन पर रख दी। सुगंध से मस्त हाथी ने उसको गिरा दिया। इस पर दुर्वासा बड़े अप्रसन्न हुए और इन्द्र को शाप दिया कि तुम्हारा ऐश्वर्य नाश होवे' (२) ब्रजवासी इन्द्र उपासक थे। भगवान् कृष्ण ने रोक दिया। इस पर इन्द्र ने रुष्ट हाकर सात दिन घोर वर्षा कर ब्रज बहा देना चाहा। परन्तु भगवान् कृष्ण ने गोवर्द्धन को धारण कर ब्रज की रक्षा की। अन्त इन्द्र को इनके अधीन होना पड़ा।

+ सूर्यवंशी राजा निबन्धन का ज्येष्ठ पुत्र त्रिशंकु बचपन से ही दुष्ट था। यह ब्राह्मणों की विवाहिता स्त्रियों को हर लेता था। राजा ने दुखी हो इसको राज्य से निकाल दिया तथा आप भी राज्य छोड़ तपस्या को चले गये। सूने राज्य में बहुत उत्पात होते देख राजा ने वन से आकर त्रिशंकु को राजा बनाया। राजा होने से पहले त्रिशंकु ने विश्वामित्र के

बहुरि सोच बस भे सियरवनू । कारन कवन भरत आगमनू ।
एक आइ अस कहा बहोरी । सेन सग चतुरग न थोरी ।
सो सुनि रामहि भा अति सोचू । इत पितुवच उत बधु सँकोचू ।
भरत सुभाउ समझ मन माहीं । प्रभुचित हित थिति[1] पावत नाहीं ।
समाधान तब भा एह जाने । भरतु कहे महँ साधु सयाने ।
लषनु लखेउ प्रभु हृदय खँभारू[2] । कहत समय सम नीति विचारू ।
बिनु पूँछे कछु कहउँ गोसाईं । सेवकुसमय न ढीठ ढिठाई ।
तुम्ह सरवग्य सिरोमनि स्वामी । आपनि समुझि कहउँ अनुगामी ।

दो०—नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील-सनेह निधान ।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय जानिअ आपु समान ॥२२८

विषयी जीव पाइ प्रभुताई । मूढ मोह बस होहिं जनाई[3] ।
भरतु नीतिरत साधु सुजाना । प्रभु पद प्रेम सकल जगु जाना ।
तेऊ आजु राजपदु पाई । चले धरम मरजाद मेटाई ।
कुटिल कुबधु कु-अवसरु ताकी । जानि राम बनबास एकाकी[4] ।
करि कुमन्त्रु[5] मन साजि समाजू । आए करइ अकटक[6] राजू ।
कोटि प्रकार कलपि[7] कुटिलाई । आए दलु बटोरि दोउ भाई ।
जौं जिय होति न कपट कुचाली । केहि सोहाति रथ-बाजि गजाली[8] ।
भरतहि दोष देइ को जाए[9] । जग बौराइ राजपद पाए ।

दो०—*ससि गुर-तिय गामी, नहुषु चढेउ भूमि-सुर-जान ।
लोकबेद ते बिमुख भा अधम न †बेन समान ॥२२९

१ (स्थिति) २ खलबली ३ अपने को दिखाते हैं अर्थात् घमड करते ह अकेला, असहाय ५ षड्यन्त्र ६ निर्विघ्न ७ सोचकर ८ हाथियों का समूह ९ व्य

*चन्द्रमा ने त्रिलोकी को जीतकर राजसूय यज्ञ किया और अपनी गुरुप की हर लिया। देवताओं ने भी चन्द्रमा का ही पक्ष लिया। तब ब्रह्मा ने बीच पड तारा बृहस्पति को दिला दी और चन्द्र का पुत्र बुध, जो तारा से पैदा उसी के यहाँ रहा। बुध के पुत्र पुरूरवा से चन्द्रवशी राजाओं की उत्पत्ति हुई

†स्वायम्भु मनु के वंशजों मे राजा अग का पुत्र बेनु जन्म से ही दु

सहसबाहु ×सुरनाथ + त्रिसकू। केहि न राजमद दीन्ह कलकू॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपुरिन रंच न राखब काऊ॥
एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे राम जानि असहाई॥

और उपद्रवी था। पिता दुखी हो वन को चले गये। वह राज्य पा, मदान्ध हो गया, ऋषि मुनि आदि मे हठात् ईश्वरोपासना छुड़ाकर अपनी पूजा कराने को बाधित करने लगा। मुनियों ने समझाया पर ध्यान नहीं दिया, अन्त में उन्हों ने भस्म कर दिया।

‡ सोमवंशी कृतवीर्य के पुत्र सहस्रबाहु अर्जुन ने दत्तात्रेय की सेवा कर सहस्र हाथ पाये। इसकी राजधानी माहिष्मती नर्वदा के किनारे पर थी। एक बार इसने रावण को बाँध लिया था।

एक समय यमदग्नि ने राजा सहस्रबाहु का—जो शिकार को आया हुआ था ससैन्य स्वागत किया। ऋषि का वैभव देख राजा आश्चर्य में आगया। यह सब काम धेनु का पराक्रम है ऐसा जान कर उसे माँगने लगा। ऋषि के न देने पर उन्हें मार डाला। कामधेनु उससे छूट कर स्वर्ग चली गई और इधर ऋषि के पुत्र परशुराम ने युद्ध में सहस्रबाहु को मार कर पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रिय रहित कर दिया।

× एक बार इन्द्र ऐरावत हाथी पर बैठ कर जा रहे थे। राह में दुर्वासा ऋषि ने स्वर्गीय पुष्पों की माला दी। इन्होंने अभिमान वश हाथी की गर्दन पर रख दी। सुगंध से मस्त हाथी ने उसको गिरा दिया। इस पर दुर्वासा बड़े अप्रसन्न हुए और इन्द्र को शाप दिया कि 'तुम्हारा ऐश्वर्य नाश होवे' (२) ब्रजवासी इन्द्र उपासक थे। भगवान् कृष्ण ने रोक दिया। इस पर इन्द्र ने रुष्ट होकर सात दिन घोर वर्षा कर ब्रज बहा देना चाहा। परन्तु भगवान् कृष्ण ने गोवर्द्धन को धारण कर ब्रज की रक्षा की। अन्त इन्द्र को उनके अधीन होना पड़ा।

+ सूर्यवंशी राजा निबन्धन का ज्येष्ठ पुत्र त्रिशंकु बचपन से ही दुष्ट था। वह ब्राह्मणों की विवाहिता स्त्रियों को हर लेता था। राजा ने दुखी हो इसको राज्य से निकाल दिया तथा आप भी राज्य छोड़ तपस्या को चले गये। सूने राज्य में बहुत उत्पात होते देख राजा ने वन से आकर ... से पहले त्रिशंकु ने ... के त्रिशंकु को राजा बनाया।

समुझि परिहि सोउ आजु बिसेखी। समर[1] सरोष राममुख पेखी[2]॥
इतना कहत नीतिरस[3] भूला। रन-रस बिटप[4] पुलक मिस फूला॥
प्रभुपद बंदि सीसरज राखी। बोले सत्य सहज बलु भाखी॥
अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहिं उपचार[5] न थोरा॥
कहँ लगि सहिअ रहिअ मन मारे। नाथ साथ धनु हाथ हमारे॥

दो०—छत्रिजाति रघु-कुल-जनमु, रामअनुज जगु जान।
लातहुँ मारे चढ़ति सिर, नीच को धूरि समान॥२३०॥

उठि कर जोरि रजायसु माँगा। मनहु बीररस सोवत जागा॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा[6]। साजि सरासनु सायकु[7] हाथा॥
आजु रामसेवक जसु लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ॥
रामनिरादर कर फलु पाई। सोवहु समरसेज दोउ भाई॥
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिलि आजू॥
जिमि करि निकर[8] दलइ[9] मृगराजू। लेइ लपेटि लवा[10] जिमि बाजू॥
तैसेहि भरतहि सेनसमेता। सानुज निदरि निपातउँ[11] खेता॥
जौं सहाय कर संकर आई। तउ मारौं रन रामदोहाई॥

दो०—अतिसरोष माखे लखनु, लखि सुनि सपथ[12] प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान[13]॥२३१॥

बाल्यचों की बड़ी रक्षा की थी। इसमें धोखे से वशिष्ठ जी गाय मारी गई थी। इस पर तीन भारी पाप होने से (१) ब्राह्मण पत्नी हरण (२) पिता का अपमान (३) गाय का मरना, इसका नाम त्रिशंकु पड़ा। त्रिशंकु ने सदेह स्वर्ग जाना चाहा। ऋषि के अनुचित बताने पर उनका अनादर किया। उन्होंने शाप दे चाण्डाल बना दिया। विश्वामित्र ने अपनी तपस्या बल से इसको स्वर्ग भेजा। लेकिन ढकेल दिया गया। इस पर विश्वामित्र ने बीच ही लटका रक्खा। इसकी लार से कर्मनाशा नदी बनी।

१ लड़ाई २ देखकर ३ उचितानुचित का ध्यान न रहा ४ वीर रस रूपी वृक्ष ५ छेड़छाड़ ६ तरकस ७ तीर ८ हाथियों के झुँड ९ नष्ट करता है १० एक छोटी चिड़िया ११ नष्ट कर डालूँ १२ सौगंध १३ भहभड़ा कर, डर कर भागना।

नुभय मगन[1] गगन भइ बानी । लषन बाहु बल बिपुल बखानी ॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा । को कहि सकइ को जाननिहारा ॥
अनुचित उचित काज कछु होऊ । समुझि करिअ भल कह सब कोऊ ॥
सहसा करि पाछे पछिताहीं । कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं ॥
सुनि सुर बचन लषन सकुचाने । राम सीय सादर सनमाने ॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई । सब ते कठिन राजमदु भाई ॥
जो अँचवत[2] माँतहिं[3] नृप तेई । नाहिन साधु सभा जेहि सेई ॥
सुनहु लषन भल भरत सरीसा । बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥

दो०—भरतहि होइ न राजमदु, बिधि हरि हर पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि[5], छीरसिंधु बिनसाइ[6] ॥२३१॥

तिमिर[7] तरुनतरनिहिं[8] मकु गिलई[9] । गगन[10] मगन मकु मेघहि[11] मिलई ॥
गोपद जल बूडहिं घटजोनी[12] । सहज छमा बरु छाडइ छोनी[13] ॥
मसक फूँक मकु मेरु उडाई । होइ न नृप मदु भरतहि भाई ॥
लषन तुम्हार सपथ पितु आना । सुचि सुबंधु नहि भरत समाना ॥
सगुन खीरु अवगुन जल ताता । मिलइ रचइ परपंच[14] बिधाता ॥
भरत हंस रबि-बंस तडागा[15] । जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी । निज जस जगत कीन्हि उजियारी ॥
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ । प्रेमपयोधि[16] मगन रघुराऊ ॥

दो०—सुनि रघुबरबानी बिबुध, देखि भरत पर हेतु ।
सकल सराहत राम सो, प्रभु को कृपानिकेतु[17] ॥२३२॥

---

१ भयभीत २ अथाह ३ पीता है ४ पागल ५ (खटाई) की बूँद ६ ... रता है ७ अँधेरा ८ दोपहर के सूर्य को ९ शायद निगल जाय १० ...काश में ११ बादल १२ अगस्तमुनि १३ पृथ्वी १४ संसार १५ ...लाब १६ प्रेम का समुद्र १७ कृपा का घर ।

*चाहे सागर को तीन चुल्लू में पीनेवाले अगस्त मुनि थोड़े से ...ल में डूब जावें ।

समुझि परिहि सोउ आजु बिसेखी। समर[1] सरोप राममुख पेखी[2]॥
इतना कहत नीतिरस[3] भूला। रन-रस बिटप[4] पुलक मिस फूला॥
प्रभुपद बंदि सीसरज राखी। बोले सत्य सहज बलु भाखी॥
अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहिं उपचार[5] न थोरा॥
कहँ लगि सहिअ रहिअ मन मारें। नाथ साथ धनु हाथ हमारें॥

दो०—छत्रिजाति रघु-कुल-जनमु, रामअनुज जगु जान।
लातहुँ मारें चढ़ति सिर, नीच को धूरि समान॥२३०॥

उठि कर जोरि रजायसु माँगा। मनहु बीररस सोवत जागा॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा[6]। साजि सरासनु सायकु[7] हाथा॥
आजु रामसेवक जसु लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ॥
रामनिरादर कर फलु पाई। सोवहु समरसेज दोउ भाई॥
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिलि आजू॥
जिमि करि-निकर[8] दलइ[9] मृगराजू। लेइ लपेटि लवा[10] जिमि बाजू॥
तैसेहि भरतहि सेनसमेता। सानुज निदरि निपातउँ[11] खेता॥
जौं सहाय कर संकर आई। तउ मारौं रन रामदोहाई॥

दो०—अतिसरोष माखे लखनु, लखि सुनि सपथ[12] प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान[13]॥२३१॥

मालश्चों की बडी रक्षा की थी। इससे धोखे से वशिष्ठ जी गाय मारी गई थी। इस पर तीन भारी पाप होने से (१) ब्राह्मण पत्नी हरण (२) पिता का अपमान (३) गाय का मरना, इसका नाम त्रिशंकु पडा। त्रिशंकु ने सदेह स्वर्ग जाना चाहा। ऋषि के अनुचित बताने पर उनका अना[दर] किया। उन्होंने शाप दे चाण्डाल बना दिया। विश्वामित्र ने अपनी तपस्या बल से इसको स्वर्ग भेजा। लेकिन ढकेल दिया गया। इस पर विश्वामित्र ने बीच ही लटका रक्खा। इसकी लार से कर्मनाशा नदी बनी।

१ लड़ाई २ देखकर ३ उचितानुचित का ध्यान न रहा ४ वीर रस रूपी वृक्ष ५ छेड़छाड़ ६ तरकस ७ तीर ८ हाथियों के झुँड ९ नष्ट करता है १० एक छोटी चिड़िया ११ नष्ट कर डालूँ १२ सौगंध १३ भड़भड़ा कर, डर कर भागना

ति भीति[1] जनु प्रजा दुखारी । त्रिविध ताप पीड़ित ग्रह मारी[2] ॥
इ सुराज सुदेस सुखारी । होहिं भरतगति तेहि अनुहारी ॥
मिनास बनसपति भ्राजा[3] । सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ॥
चिव बिरागु बिबेकु नरेसू । बिपिन सुहावन पावन देसू ॥
ट जम नियम सैल रजधानी । सांति सुमति सुचि सुंदरि रानी ॥
कल अंग संपन्न सुराऊ । रामचरन आश्रित[6] चित चाऊ[7] ॥
दो०—जीति मोह-महिपालु-दल[8] सहित बिवेक भुआलु ।
करत अकंटक[9] राजु पुर सुख संपदा सुकालु ॥२३६॥
नप्रदेस मुनिबास घनेरे । जनु पुर नगर गाउँ गनखेरे[10] ॥
बेपुल[11] बिचित्र बिहँग मृग नाना । प्रजासमाजु न जाइ बखाना ॥
गहा[12] करिहरि[13] बाघ बराहा[14] । देखि महिष[15] बृष[16] साजु सराहा ॥
यरु बिहाय चरहिं एक संगा । जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥
करना झरहिं, मत्तगज गाजहिं । मनहुँ निसान बिबिध बिधि बाजहिं ॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन । कूजत मंजु मराल मुदितमन ॥
अलिगन गावत नाचत मोरा । जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा ॥
बलि बिटप तृन सफल सफूला । सबु समाजु मुद-मंगल-मूला ॥
दो० रामसैल सोभा निरखि, भरतहृदय अतिप्रेमु ।
तापस तपफल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेमु ॥२३७॥
तन पैराट ऊँचे चढि धाई । कहेउ भरत सन भुजा उठाई ॥
नाथ देखिअहि बिटप बिसाला । पाकरि[17] जंबु[18] रसाल[19] तमाला[20] ॥

१ ईति का डर, ईति ६ हैं—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूसक, टीड़ी, सुक और समीपवर्ती राजाओं की चढ़ाई । २ भारी ग्रहदशा ३ शोभित है ४ जगह ५ वीर ६ सहारे से ७ उत्साह है ८ मोहरूपी राजा की सेना ९ सकंटक १० पुराने बसे हुए गाँव ११ बहुतही १२ गेंडा १३ हाथी और सिंह १४ सुअर १५ भैंस १६ बैल १७ पापरी १८ जामुन १९ आम २० तमाल का पेड़, आवनूस ।

ॐ उत्प्रेक्षा से सावयव अभेद रूपक ।

जौं न होत जग जनम भरत को । सकल-धरम-धुर-धरनि-धरतको॥
कवि-कुल-अगम भरत गुन-गाथा । को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥
लषन राम सिय सुनि सुरबानी । अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी॥
इहाँ भरतु सब सहित सहाए[1] । मंदाकिनी पुनीत नहाए॥
सरितसमीप राखि सब लोगा । माँगि मातु गुर-सचिव नियोगा[2]
चले भरत जहँ सियरघुराई । साथ निपादनाथ लघुभाई॥
समुझि मातुकरतब सकुचाहीं । करत कुतरक कोटि मन माहीं॥
राम लखन-सिय सुनि ममनाऊँ । उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥

दो०—मातु मते महँ मानि मोहि, जो कछु कहहिं सो थोर ।
अघ अवगुन छमि आदरहि समुझि आपनी ओर॥२३४॥

जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी । जौं सनमानहिं सेवक मानी ॥
मोरे सरन राम की पनहीं[3] । राम सुस्वामि दोष सब जनहीं[4]॥
जग जसभाजन चातक मीना । नेम प्रेम निज[5] निपुन नवीना[6]॥
अस मन गुनत चले मग जाता । सकुच सनेह सिथिल सब गाता॥
फेरति मनहिं मातुकृत खोरी । चलत भगतिबल धीरजधोरी॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ । तब पथ परत उताइल[7] पाऊ॥
भरतदसा तेहि अवसर कैसी । जलप्रबाह जल-अलि-गति[8] जैसी॥
देखि भरत कर सोचु सनेहू । भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥

दो०—लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषादु ।
मिटिहि सोच होइहि हरषु पुनि परिनाम बिषादु[9]॥२३५॥

सेवक बचन सत्य सब जाने । आस्रम निकट जाइ नियराने[10]॥
भरत दीख वन सैल समाजू । मुदित छुधित[11] जनु पाइ सुनाजू॥

---

१ साथी २ आज्ञा ३ जूता (उपनाह) ४ सेवक का अथा[...] भरत कहते हैं 'मेरा' ५ अपना ६ नया ७ जल्दी जल्दी ८ पानी के भौं[...] की दशा ९ दुःख १० पास आये ११ भूखा ।

ईति भीति[1] जनु प्रजा दुखारी। त्रिविध ताप पीडित ग्रह भारी[2]॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहिं भरतगति तेहि अनुहारी॥
रामबास बनसपति भ्राजा[3]। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा[3]॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू॥
भट[4] जम नियम सैल रजधानी। साति सुमति सुचि सुदंरि रानी॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ। रामचरन आस्रित[5] चित चाऊ[6]॥
दो०—जीति मोह-महिपालु-दल[7] सहित बिबेक भुआलु।
करत अकंटक[8] राजु पुर सुख संपदा सुकालु॥२३६॥
बनप्रदेस मुनिबास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँ गनघेरे[10]॥[1]
बिपुल[11] बिचित्र बिहँग मृग नाना। प्रजासमाजु न जाइ बखाना॥
खगहा[12] करिहरि[13] बाघ बराहा[14] देखि महिष[15] वृष[16] साजु सराहा॥
बयरु बिहाय चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा॥
झरना झरहिं, मत्तगज गाजहिं। मनहुँ निसान बिबिध बिधि बाजहिं॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदितमन॥
अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सबु समाजु मुद मंगल-मूला॥
दो० राममैल सोभा निरखि, भरतहृदय अतिप्रेमु।
तापस तपफल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेमु॥२३७॥
तब केवट ऊँचे चढि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई॥
नाथ देखि अहि बिटप बिसाला। पाकरि[17] जंबु[18] रसाल[19] तमाला[20]॥

[1] ईति का डर, ईति ६ हैं—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूसक, टीड़ी, सुक और समीपवर्ती राजाओं की चढ़ाई। २ भारी ग्रहदशा ३ शोभित है ४ जगत ५ वीर ६ सहारे से ७ उत्साह है ८ मोहरूपी राजा की सेना ९ निष्कंटक १० पुराने बसे हुए गाँव ११ बहुतही १२ गेंडा १३ हाथी और सिंह १४ सुअर १५ भैंस १६ बैल १७ पाकरी १८ जामुन १९ आम २० तमाल का पेड़, आबनूस।
⊕ उत्प्रेक्षा में सावयव अभेद रूपक।

तिन्ह तरुवरन्ह मध्य बट[1] सोहा । मंजु बिसाल देखि मन मोहा ॥
नील सघन पल्लव फल लाला । अविरल[3] छाँह सुखद सब काला ॥
मानहुँ तिमिर-अरुन-मय रासी । बिरची बिधि सकेलि सुखमा[5] सी ॥
ए तरु सरितसमीप गोसाँई । रघुबर परनकुटी जहँ छाई ॥
तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए । कहुँ कहुँ सिय कहुँ लषन लगाए ॥
बटछाया बेदिका बनाई । सिय निज-पानि-सरोज सुहाई ॥

दो०—जहाँ बैठि मुनि गन सहित, नित सिय रामसुजान ।
सुनहिं कथा इतिहास सब, आगम निगम[6] पुरान ॥२३८॥

सखानचन सुनि बिटप निहारी । उमगे भरत बिलोचन बारी ॥
करत प्रनामु चले दोउ भाई । कहत प्रीति सारद सकुचाई ॥
हरषहि निरखि राम पद अंका[7] । मानहुँ पारसु पायेउ रंका ॥
रजसिर धरि हियनयनन्हि लावहिं । रघुबर-मिलन सरिस सुख पावहिं ॥
देखि भरतगति अकथ अतीवा[8] । प्रेममगन मृग खग जड जीवा ॥
सखहि सनेहबिबस मग भूला । कहि सुपथ सुर बरषहिं फूला ॥
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे । सहज सनेहु सराहन लागे ॥
होत न भूतल भाउ भरत को । अचर सचर[10],चरअचरकरतको ॥

दो०—प्रेम अमिअ मदरु[11] बिरहु, भरत पयोधि गँभीर[12] ।
मथि प्रगटेउ सुर-साधु हित, कृपासिंधु रघुबीर ॥२३९॥

सखा समेत मनोहर जोटा । लखेउ न लषन सघन बन ओटा ॥
भरत दीख प्रभु आस्रम पावन । सकल-सु मंगल सदन सुहावन ॥
करत प्रवेस मिटइ दुखदावा । जनु जोगी परमारथु पावा ॥
देखे भरत लषन प्रभु आगे । पूछे बचन कहत अनुरागे ॥
सीस जटा कटि मुनिपट बाँधे । तून कसे, कर सर, धनु

१ बरगद २ घना ३ सर्वदा रहने वाली ४ दो ... ७ निशान ८ अत्यन्त अकथनीय ९ स्थिर ... ११ ... पवत १२ गहरा समुद्र ।

तहँ पर मुनि साधु-समाजू। सीयसहित राजत रघुराजू॥
बलकल बसन[1] जटिल[2] तनुस्यामा। जनु मुनिबेष कीन्ह रतिकामा॥
कर-कमलनि धनुसायकु फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत॥

दो०—लसत मंजु मुनि-मण्डली मध्य सीय रघुचंद।
ग्यानसभा जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानंद॥२४०॥

सानुज[3] सखा समेत मगन मन। बिसरे[4] हरष सोक-सुख-दुख-गन॥
पाहि[5] नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट[6] की नाईं॥
बचन सप्रेम लषन पहिचाने। करत प्रनामु भरत जिय जाने॥
बंधु सनेह सरस[7] एहि ओरा। उत साहिब-सेवा बरजोरा॥
मिलि न जाइ नहिं गुदरत[8] बनई। सुकबि लषनमन की गत भनई[9]॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग[10] जनु खैंच खेलारू॥
कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥

दो०—बरबस लिए उठाइ उर, लाए कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि, बिसरे सबहिं अपान[11]॥२४१॥

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबिकुल अगम करम मन बानी॥
परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति[12] बिसराई॥
कहहु सुप्रेम प्रगट को करई। केहि छाया कबि-मति अनुसरई॥
कबिहिं अरथ आखर[13] बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा॥
अगमसनेह भरत-रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को॥
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती। बाजु सुराग कि गाँडरताँती[14]॥
मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की। सुरगन सभय धकधकी धरकी॥

---

१ छाल के वस्त्र २ जटा रखाये हुए ३ स+अनुज, भाइ के साथ ४ दूर होगये ५ रक्षा करो ६ लकड़ी ७ स+रस, रस युक्त, प्रेम ८ छोड़ते ९ कहता है १० पतंग ११ अपनपे का १२ (अहम्+इति) अहंकार १३ अक्षर १४ भेड़ (ऊन) की ताँत।

समुझाए सुरगुर जड जागे[1] । बरषि प्रसून प्रसंसन लागे

दो०—मिलि सप्रेम रिपुसूदनहि केवट भेंटेउ राम ।
भूरि भाय भेंटे भरत, लछिमन करत प्रनाम ॥२४२॥

भेंटेउ लषन ललकि[2] लघु भाई । बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे । अभिमत आसिष पाइ अनंदे
सानुज भरत उमगि अनुरागा । धरि सिर सिय-पद-पदुम-परागा
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए । सिर करकमल परसि बैठाए
सीय असीस दीन्हि मन माहीं । मगन सनेह देहसुधि नाहीं
सब बिधि सानुकूल लखि सीता । भे निसोच उर अपडर[3] बीता
कोउ कछु कहइ न कोउ कछु पूछा । प्रेम भरा मन निज गति छूछा
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि । जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि

दो०—नाथ साथ मुनिनाथ के, मातु सकल पुरलोग ।
सेवक सेनप[4] सचिव[5] सब, आए बिकल-बियोग ॥२४३॥

सीलसिंधु सुनि गुरु आगवनू । सियसमीप राखे रिपुदवनू
चले सबेग राम तेहि काला । धीर-धरम धुर दीनदयाला
गुरहि देखि सानुज अनुरागे । दंडप्रनाम करन प्रभु लागे
मुनिबर धाइ लिए उर लाई । प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई
प्रेम पुलकि केवट कहि नामू । कीन्ह दूर तें दंडप्रनामू
रामसखा रिषि बरबस भेंटा । जनु महि लुठत[6] सनेह समेटा
रघुपति भगति सुमंगल मूला । नभ सराहिं सुर बरषहिं फूला
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं । बड बसिष्ठसम को जग माहीं

दो०—जेहि लखि लषनहुँ तें अधिक मिले मुदित मुनिराउ ।
सो सीता-पति-भजन को, प्रगट प्रताप प्रभाउ ॥२४४॥

१ ज्ञान हुआ २ प्रेम के साथ जल्दी करके ३ अपने हृदय में डर पैदा होना ४ सेना + प=सेनापति ५ मंत्री ६ गिरे हुए ।

आरत लोग राम सबु जाना। करुनाकर सुजान भगवाना॥
जो जेहि भाय रहा अभिलाषी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुख[1] राखी॥
सानुज मिलि पल महुँ सब काहू। कीन्ह दूरि दुखु दारुन दाहू॥
यहि बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं॥
मिलि केवटहि उमगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा॥
देखी राम दुखित महतारीं। जनु सुबेलि अवली[3] हिम[4] मारीं॥
प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभाय भगति मति भेई॥
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी॥

दो०—भेंटी रघुबर मातु सब करि प्रबोध परितोषु।
अंब ईसआधीन जगु, काहु न देइअ दोषु॥२४४॥

गुर तिय पद बंदे दुहुँ भाई। सहित बिप्रतिय जे सँग आई॥
गंग गौरि-सम सब सनमानी[6]। देहिं असीस मुदित मृदुबानी॥
गहि पद लगे सुमित्राअंका। जनु भेंटी सपति अति रंका॥
पुनि जननी चरननि दोउ भ्राता। परे प्रेम-ब्याकुल सब गाता॥
अति अनुराग अंब उर लाए। नयन सनेह सलिल[7] अन्हवाए॥
तेहि अवसर कर हरष बिषादू। किमि कबि कहइ मूक जिमि स्वादू॥
मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ। गुरुसन कहेउ कि धारिअ पाऊ॥
पुरजन पाइ मुनीस नियोगू[8]। जल थल तकि तकि उतरेउ लोगू॥

दो०—महिसुर[9] मंत्री मातु गुरु, गने लोग लिये साथ।
पावन आस्रम गवनु किए, भरत लषन रघुनाथ॥२४६॥

सीय आइ मुनि बर-पग लागी। उचित असीस लही मनमाँगी॥
गुरपतिनिहिं मुनि तियन्ह समेता। मिली प्रेम कहि जाइ न जेता॥
बंदि बंदि पग सिय सबही के। आसिरबचन[10] लहे प्रिय जी के॥

---

[1] इच्छा [2] करोड़ों घड़ों में [3] अच्छी बेलों की पाँति [4] बर्फ [5] दोष [6] आदर किया [7] स्नेहरूपी पानी [8] मुनि की आज्ञा [9] ब्राह्मण [10] आशीर्वाद।

सासु सकल जब सीय निहारी । मूँदे नयन सहमि सुकुमारी ।
परी बधिक-बस मनहुँ मराली[१]-। काह कीन्ह करतार कुचाली ।
तिन्ह सिय निरखि निपट[२] दुखपावा। सो सब सहिअ जो दैउ सहावा।
जनकसुता तब उर धरि धीरा । नील-नलिन-लोयन भरि नीरा[४] ।
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई । तेहि अवसर करुना[६] महि छाई।

दो०—लागि लागि पग सबनि सिय, भेटति अति अनुराग ।
हृदय असीसहिं प्रेमबस, रहिअहु भरी सोहाग ॥२४७॥

बिकल सनेह सीय सब रानी । बैठन सबहि कहेउ गुर ग्यानी ।
कहिं जगगति मायिक[७] मुनिनाथा । कहे कछुक परमारथ[८] गाथा ।
नृप कर सुर-पुर-गवनु सुनावा । सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा ।
मरनहेतु निजनेहु बिचारी । भे अति बिकल धीर-धुर-धारी ॥
कुलिसकठोर[९] सुनत कटुबानी । बिलपत लपन सीय सब रानी ।
सोक बिकल अति सकल समाजू । मानहुँ राजु अकाजेउ[१०] आजू ।
मुनिबर बहुरि राम समुझाए । सहित समाज सुसरित नहाए ।
ब्रतु निरबु[११] तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहे जलु काहु न लीन्हा॥

दो०—भोर भए रघुनन्दनहिं, जो मुनि आयसु दीन्ह ।
स्रद्धा[१२] भगति समेत प्रभु, सो सब सादर कीन्ह ॥२४८॥

करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी । भे पुनीत पातक-तम-तरनी[१३]।
जासु नाम पावक अघतूला[१४] । सुमिरत सकल सु मंगल-मूला॥
सुद्ध सो भयेउ साधु समत अस । तीरथ आवाहन[१५] सुरसरि जस ।
सुद्ध भएँ दुइ बासर बीते । बोले गुरसन राम पिरीते ॥

---

१ बहालया के वश म २ हासना ३ बिल्कुल ४ नाल कमल के समान नेत्र ५ (नीर) पानी ६ शोक ७ माया सबधी ८ मोक्ष की कथा ९ बज्र से भी कठोर १० मृत्यु ११ निर्जल ब्रत १२ (श्रद्धा) आदरणीय प्रेम १३ पाप रूपी अन्धकार के लिये जो सूर्यरूप है १४ पाप रुई के तुल्य हैं १५ बुलाना ।

नाथ लोग सब निपट दुखारी । कंद-मूल-फल-अम्बु-अहारी ॥
सानुज भरतु सचिव सब माता । देखि मोहि पल जिमि जुग जाता ॥
सब समेत पुर धारिअ पाऊ । आपु इहाँ अमरावति राऊ ॥
बहुत कहेउँ सब कियेउँ ढिठाई । उचित होइ तस करिअ गोसाईं ॥

दो०—धर्मसेतु करुनायतन, कस न कहहु अस राम ।
लोग दुखित दिन दुइ दरस, देखि लहहिं बिस्राम ॥२४९॥

राम बचन सुनि सभय समाजू । जनु जलनिधि महुँ बिकल जहाजू ॥
सुनि गुरुगिरा सु-मंगल-मूला । भयेउ मनहुँ मारुत अनुकूला ॥
पावनि पय तिहुँ काल नहाहीं । जो बिलोकि अघओघ[1] नसाहीं ॥
मंगलमूरति लोचन भरि भरि । निरखहिं हरषि दंडवत करि करि ॥
राम-सैल-बन देखन जाहीं । जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं ॥
झरना झरहिं सुधासम बारी[2] । त्रि बिधि ताप-हर त्रिबिध बयारी ॥
बिटप बेलि तृन[3] अगनित जाती । फल प्रसून[4] पल्लव बहु भाँती ॥
सुन्दर सिला सुखद तरु छाहीं । जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं ॥

दो०—सरनि सरोरुह जल बिहँग कूजत गुंजत भृंग ।
बैर बिगत बिहरत बिपिन मृग बिहंग बहुरंग ॥२५०॥

कोल किरात भिल्ल बनबासी । मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधासी ॥
भरि भरि परनपुटी[6] रचि रूरी । कंद मूल फल अंकुर जूरी[7] ॥
सबहिं देहिं करि बिनय प्रनामा । कहि कहि स्वादुभेद गुन नामा ॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं । फेरत राम दोहाई देहीं ॥
कहहिं सनेह मगन मृदुबानी । मानत साधु प्रेम पहिचानी ॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा । पावा दरसनु रामप्रसादा ॥
हमहिं अगम अति दरसु तुम्हारा । जस मरुधरनि[8] देव धुनि धारा ॥
रामकृपाल निषाद नेवाजा । परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा ॥

१ पाप का समूह २ पानी ३ घास ४ फूल ५ पक्षी ६ दोना
७ इकट्ठा ८ मरुस्थल, मारवाड़ ।

सासु सकल जब सीय निहारी। मूँदे नयन सहमि सुकुमारी॥
परी बधिक-बस मनहुँ मराली[१]। काह कीन्ह करतार कुचाली॥
तिन्ह सिय निरखि निपट[२] दुखपावा। सो सब सहिअ जो दैउ सहावा॥
जनकसुता तब उर धरि धीरा। नील नलिन-लोयन[४] भरि नीरा[५]॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना[६] महि छाई॥

दो०—लागि लागि पग सबनि सिय, भेंटति अति अनुराग।
हृदय असीसहिं प्रेमबस, रहिअहु भरी सोहाग॥२४७॥

बिकल सनेह सीय सब रानी। बैठन सबहि कहेउ गुर ग्यानी॥
कहि जगगति मायिक[७] मुनिनाथा। कहे कछुक परमारथ[८] गाथा॥
नृप कर सुर-पुर-गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा॥
मरनहेतु निजनेहु बिचारी। भे अति बिकल धीर-धुर-धारी॥
कुलिसकठोर[९] सुनत कटुबानी। बिलपत लखन सीय सब रानी।
सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहुँ राजु अकाजेउ[१०] आजू॥
मुनिबर बहुरि राम समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए।
ब्रतु निरबु[११] तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहे जलु काहु न लीन्हा॥

दो०—भोर भए रघुनन्दनहिं, जो मुनि आयसु दीन्ह।
स्रद्धा[१२] भगति समेत प्रभु, सो सब सादर कीन्ह॥२४८॥

करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक-तम तरनी[१३]।
जासु नाम पावक अघतूला[१४]। सुमिरत सकल-सु मगल मूला॥
सुद्ध सो भयेउ साधु समत अस। तीरथ आवाहन[१५] सुरसरि जस॥
सुद्ध भएँ दुइ बासर बीते। बोले गुरसन राम पिरीते॥

---

१ बहाल्या के वश म २ हासना ३ बिलकुल ४ नाल कमल के समान नेत्र ५ (नीर) पानी ६ शोक ७ माया सबधी ८ मोक्ष की कथा ९ वज्र से भी कठोर १० मृत्यु ११ निर्जल ब्रत १२ (श्रद्धा) आदरणीय प्रेम १३ पाप रूपी अन्धकार के लिये जो सूर्यरूप हैं १४ पाप रुई के तुल्य हैं १५ बुलाना ।

नाथ लोग सब निपट दुखारी । कंद-मूल-फल-अंबु-अहारी ॥
सानुज भरतु सचिव सब माता । देखि मोहि पल जिमि जुग जाता ॥
सब समेत पुर धारिअ पाऊ । आपु इहाँ अमरावति राऊ ॥
बहुत कहेउँ सब कियेउँ ढिठाई । उचित होइ तस करिअ गोसाईं ॥

दो०—धर्मसेतु करुनायतन, कस न कहहु अस राम ।
लोग दुखित दिन दुइ दरस, देखि लहहिं बिस्राम ॥२४९॥

राम वचन सुनि सभय समाजू । जनु जलनिधि महुँ बिकल जहाजू ॥
सुनि गुरुगिरा सुमंगल-मूला । भयेउ मनहुँ मारुत अनुकूला ॥
पावनि पय तिहुँ काल नहाहीं । जो बिलोकि अघओघ[1] नसाहीं ॥
मंगलमूरति लोचन भरि भरि । निरखहिं हरषि दंडवत करि करि ॥
राम-सैल-बन देखन जाहीं । जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं ॥
झरना झरहिं सुधासम बारी[2] । त्रिबिधि ताप-हर त्रिबिध बयारी ॥
बिटप बेलि तृन[3] अगनित जाती । फल प्रसून[4] पल्लव बहु भाँती ॥
सुन्दर सिला सुखद तरु छाहीं । जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं ॥

दो०—सरनि सरोरुह जल बिहँग कूजत गुंजत भृंग ।
बैर-बिगत बिहरत बिपिन मृग बिहंग बहुरंग ॥२५०॥

कोल किरात भिल्ल बनवासी । मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधासी ॥
भरि भरि परनपुटी[6] रचि रूरी । कंद मूल फल अंकुर जूरी[7] ॥
सबहिं देहिं करि बिनय प्रनामा । कहि कहि स्वादु भेद गुन नामा ॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं । फेरत राम दोहाई देहीं ॥
कहहिं सनेह-मगन मृदुबानी । मानत साधु प्रेम पहिचानी ॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा । पावा दरसनु रामप्रसादा ॥
हमहिं अगम अति दरसु तुम्हारा । जस मरुधरनि[8] देव धुनि धारा ॥
रामकृपाल निषाद नेवाजा । परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा ॥

१ पापों का समूह २ पानी ३ घास ४ फूल ५ पक्षी ६ दोना
७ इकट्ठा ८ मरुस्थल, मारवाड़ ।

दो०—एह जिअ जानि सँकोचु तजि, करिअ छोहु[1] लखि नेहु ।
हमहिं कृतारथ करन लगि, फल तृन अंकुर[2] लेहु ॥२५१॥

तुम्ह प्रिय पाहुन[3] वन पग धारे । सेवाजोगु न भाग हमारे ॥
देव काह हम तुम्हहिं गोसाईं । ईंधनु पात किरात मिताई ॥
एह हमारि अति बड़ि सेवकाई । लेहिं न वासन[4] वसन चोराई ॥
हम जड़ जीव जीव गन घाती[5] । कुटिल कुचाली कुमति कुजाती ॥
पाप करत निसि वासर जाहीं । नहिं पट कटि[6] नहिं पेट अघाहीं ॥
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ । एह रघु-नन्दन दरस प्रभाऊ ॥
जब तें प्रभु-पद-पदुम निहारे । मिटे दुसह दुख दोप हमारे ॥
वचन सुनत पुरजन अनुरागे । तिन्ह के भाग सराहन लागे ॥

छंद—लागे सराहन भाग सब अनुराग वचन सुनावहीं ।
बोलनि मिलनि सिय-राम-चरन सनेहु लखि सुखु पावहीं ॥
नरनारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा ।
तुलसी कृपा रघु-बंस-मनि की लोह लै नौका[7] तिरा ॥

सो०—विहरहिं वन चहुँ ओर प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब ।
जल ज्यों दादुर[8] मोर, भए पीन[9] पावस[10] प्रथम ॥२५२॥

पुरजन नारि मगन अति प्रीती । वासर जाहिं पलक सम बीती ॥
सीय सासु प्रति वेष[*] बनाई । सादर करै सरिस सेवकाई ॥
लखा न मरमु राम बिनु काहू । माया सब सियमाया माहू[11] ॥
सीय सासु सेवा बस कीन्ही । तिन्ह लहि सुख सिख आसिप दीन्ही ॥
लखि सियसहित सरल दोउ भाई । कुटिल रानि पछितानि अघाई ॥
अवनि जमहि जाँचति कैकेई । महिं न बीचु[12] विधि मीचु[13] न देई ॥

१ कृपा २ अंकुआ ३ अतिथि ४ पात्र ५ जीवों का नाश करने वाले ६ कमर में फेंट ७ नाव ८ मेढक ९ हृष्ट पुष्ट १० बरसात ११ बीच १२ फटकर स्थान देना १३ मृत्यु * कई रूप ।

लोकहु वेद विदित कवि कहहीं । राम विमुख थलु नरक न लहहीं ।
यह ससउ सब के मन माहीं । राम गवँन[१] विधि अवध कि नाहीं॥

दो०—निसि न नींद नहिं भूख दिन भरतु विकल सुचि सोच ।
नीच कीच विच मगन[२] जस, मीनहि सलिल सँकोच॥२५३॥

कीन्ह मातुमिस काल कुचाली । ईति भीति जस पाकत साली[३]॥
केहि विधि होइ राम अभिषेकू । मोहि अवकलत[४] उपाउ न एकू॥
अवसि फिरहिं गुरु आयसु मानी । मुनि पुनि कहब रामरुचि जानी ॥
मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ । रामजननि हठ करवि कि काऊ॥
मोहिं अनुचर कर केतिक वाता । तेहि महँ कुसमउ वाम विधाता॥
जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू । हरगिरि[५] तें गुरु सेवक धरमू ॥
एकउ जुगुति न मन ठहरानी । सोचत भरतहिं रैनि विहानी[६] ॥
प्रात नहाइ प्रभुहि सिर नाई । बैठत पठए रिषय बोलाई ॥

दो०—गुर पद कमल प्रनामु करि, बैठे आयसु पाइ ।
विप्र महाजन सचिव सब, जुरे सभासद आइ ॥२५४॥

बोले मुनिबर समय समाना । सुनहु सभासद भरत सुजाना ॥
धरमधुरीन भानुकुल भानू । राजा रामु स्ववस[७] भगवानू ॥
सत्यसंध पालक स्रुति सेतू । रामजनमु जग मंगलहेतू ॥
गुर पितु मातु वचन अनुसारी । खल दलु दलन देव हित कारी ॥
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु । कोउ न रामसम जान जथारथु[८]॥
विधि हरि हरु ससि रवि दिसिपाला[९] । माया जीव करम कुलि काला[१०]॥
अहिप[११] महिप[१२] जहँलगि प्रभुताई । जोग सिद्धि निगमागम गाई ॥
करि विचार जिय देखहु नीकें । रामरजाइ सीस सबही कें ॥

१ जाना २ डूबी हुई ३ पकी हुई धान की खेती ४ दिखाई देती है । ५ कैलाश पर्वत ६ रात्रि बीत गई ७ स्वाधीन ८ वास्तव ९ दिग्पाल १० सम्पूर्ण समय ११ शेषनाग १२ राजा ।

दो०—रातें राम रजाइ रख, हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब, सब मिलि समत सोइ ॥२५५॥

सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद-मूल मगु एकू॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ॥
सब सादर सुनि मुनि बरबानी। नय[1] परमारथ स्वारथ सानी॥
उतरु न आव लोग भए भोरे। तब सिरु नाइ भरत कर जोरे॥
भानुबंस भए भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे॥
जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता॥
दलि[2] दुख सजइ[3] सकल कल्याना। अस असीस राउरि जग जाना॥
सोइ गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेंकी[4]। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥

दो०—बूझिअ मोहि उपाउ अब, सो सब मोर अभागु।
सुनि सनेह-मय-बचन गुर, उर उमगा अनुरागु ॥२५६॥

तात बात फुरि राम कृपाहीं। रामबिमुख सिधि सपनेहु नाहीं॥
सकुचउँ तात कहत एक बाता। अरध तजहिं बुध सरबस जाता॥
तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहि लषन सीय रघुराई॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। भे प्रमोद-परि-पूरन गाता॥
मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा। जनु जिय राउ[5] राम भए राजा॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिं रानी॥
कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हे। फलु जग जीवन्ह अभिमत[6] दीन्हे॥
कानन करउँ जनम भरि बासू। एहि तें अधिक न मोर सुपासू॥

दो०—अँतरजामी रामु सिय, तुम्ह सरबग्य सुजान।
जौं फुर कहहु त नाथ निज, कीजिअ बचनु प्रमान ॥२५७॥

---

१ नीति २ नाश करना ३ करती है ४ उल्लघन किया ५ राजा दशरथ जीवित हो गये ६ इच्छित ।

भरतबचन सुनि देखि सनेहू । सभासहित मुनि भयेउ बिदेहू ॥
भरत-महा-महिमा जलरासी । मुनिमति ठाढि तीर अबलासी[1]॥
गा चह पार जतनु हिय हेरा[2] । पावति नाव न बोहित बेरा[3] ॥
अउर करहि को भरत बडाई । सर सीपी[4] की सिंधु समाई ॥
भरत मुनिहिं मनभीतर भाए । सहित समाज राम पहिं आए ॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु । बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु ॥
बोले मुनिबरु बचन बिचारी । देस-काल-अवसर-अनुहारी ॥
सुनहु राम सरबग्य सुजाना । धरम-नीति-गुन ग्यान निधाना ॥

दो०—सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ ।
पुरजन-जननी-भरत हित, होइ सो कहिअ उपाउ । २५८॥

आरत कहहिं बिचारि न काऊ । सूझ जुआरिहि आपुन दाऊ[5] ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ । नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ ॥
सब कर हित रुख राउरि राखे । आयसु किए मुदित फुर भाखे ॥
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई । माथे मानि करउँ सिख सोई ॥
पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं । सो सब भाँति घटिहि सेवकाईं ॥
कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाखा । भरत-सनेह-बिचार न राखा ॥
तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी । भरत भगति बस भइ मति मोरी ॥
मोरे जान भरत रुचि राखी । जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी[7] ॥

दो०—भरत बिनय सादर सुनिअ, करिअ बिचार बहोरि ।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि ॥२५९॥

गुर अनुरागु भरत पर देखी । राम हृदय आनन्दु बिसेषी ॥
भरतहिं धरम धुरन्धर जानी । निज सेवक तन-मानस-बानी ॥
बोले गुरु-आयसु अनुकूला । बचन मंजु मृदु मंगलमूला ॥

---

१ स्त्री २ विचार किया ३ जहाज और बेडा ४ तालाब का सीप ५ घर ६ दाव ७ साक्षी (गवाही) ।

नाथ-सपथ पितु-चरन-दोहाई। भयेउ न भुवन भरत सम भाई॥
जे गुरु-पद-अंबुज-अनुरागी। ते लोकहुँ वेदहुँ बडभागी॥
राउर जापर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू॥
लखि लघु बन्धु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बडाई॥
भरतु कहहिं सो किएँ भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई[1]॥

दो०—तब मुनि बोले भरत सन, सब सँकोचु तजि तात।
कृपासिन्धु प्रियबन्धु सन, कहहु हृदय कइ बात॥२६०॥

सुनि मुनि बचन राम रुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई[2]॥
लखि अपने सिर सबु छरु भारू[3]। कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू॥
पुलकि सरीर सभा भए ठाढे। नीरज नयन नेह जल बाढे॥
कहब मोर मुनि नाथ निबाहा[4]। एहि ते अधिक कहउँ मैं काहा॥
मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह[5] न काऊ॥
मो पर कृपा सनेहु बिसेखी। खेलत खुनस[6] न कबहूँ देखी॥
सिसुपन तें परिहरेउ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जिय जोही। हारेहु खेल जितावहिं मोही॥

दो०—महूँ सनेह-सँकोच-बस, सनमुख कहे न बयन।
दरसन तृपित न आजु लगि प्रेम पियासे नयन॥२६१॥

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा[7]। नीच बीचु जननी मिस[8] पारा[9]॥
एहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनी समुझि साधु सुचि को भा॥
मातु मन्द मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली॥
फरइ कि कोदव[10] बालि सुसाली। मुकताप्रसव[11] कि संबुक ताली[12]॥
सपनेहु दोस कलेसु न काहू। मोर अभाग-उदधि-अवगाहू[13]॥

---

१ चुप हो २ अत्यंत ३ बोझ ४ निबाह किया ५ क्रोध ६ प्रतिहिंसा ७ लाड प्यार ८ बहाना ९ हुआ १० कोदों ११ मोती पैदा होते हैं १२ तालाब की सीप १३ बुरे भाग्य का गहरा समुद्र।

बिनु समुझें निज अघ परिपाकू[1]। जारिउँ जाय[2] जननि कहि काकू[3]॥
हृदय हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहि भल मोरा॥
गुर गोसाइँ साहिब सियरामू। लागत मोहि नीक परिनामू॥
दो०—साधु सभा गुर-प्रभु निकट कहउँ सुथल[4] मतिभाउ।
प्रेम प्रपंच कि झूठ फुर जानहिं मुनि रघुराउ॥२६२॥
भूपतिमरन प्रेम पनु राखी। जननी कुमति जगत सब साखी॥
देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं दुसह जर पुर नर-नारी॥
महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला॥
सुनि बनगवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनिबेष लखन-सिय-साथा॥
बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। संकरु साखि रहेउँ एहि घाएँ[5]॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयेउ न बेहू[6]॥
अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई[7]॥
जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी[8]॥
दो०—तेइ रघुनंदनु लखनु सिय अनहित[9] लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख दैउ सहावइ काहि॥२६३॥
सुनि अति बिकल भरत-बर-बानी। आरति[10] प्रीति बिनय-नय सानी॥
सोकमगन सब सभा खभारू[11]। मनहुँ कमल बन परेउ तुसारू[12]॥
कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरतप्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी॥
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव बन-चंदू[13]॥
तात जाय जिअ करहु गलानी। ईस अधीन जीवगति[14] जानी॥
तीनि काल त्रिभुवन मत मोरें। पुन्यसलोक[15] तात तर[16] तोरें॥
उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोक-परलोकु नसाई॥

---

१ अपने पापों का फल २ व्यर्थ ३ बुराभला (व्यंग) कह कर ४ चित्रकूट पर ५ दुःख ६ छेद ७ जड़ जीव के कारण सभी सहना पड़ा ८ तेज, भयंकर ९ बुरे १० दुःख पूर्ण ११ व्याकुल १२ पाला १३ सूर्यकुल की कुमुदिनी के वन को चन्द्रमा के समान सुखदाई १४ कर्म-गति १५ पुण्यात्मा (पुण्यश्लोक) १६ नीचे।

दोपु देहिं जननिहि जड तेई । जिन्ह गुर-साधु सभा नहिं सेई ॥
दो०—मिटिहहिं पाप प्रपंच[१] सब अखिल[२] अमगल भार[३] ।
लोक-सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार ॥२६४॥

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउरि राखी ॥
तात कुतरक करहु जनि जाएँ । बैर प्रेम नहिं दुरइ दुराएँ ॥
मुनिगन निकट बिहँग मृग जाहीं । बाधक बधिक[४] बिलोकि पराहीं ॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना । मानुप-तनु गुन-ग्यान-निधाना ॥
तात तुम्हहिं मैं जानउँ नीके । करउँ काह असमजस जी के ॥
राखेउ राय सत्य मोहि त्यागी । तनु परिहरेउ प्रेमपन लागी ॥
तासु बचन मेटत मन सोचू । तेहि ते अधिक तुम्हार सँकोचू ॥
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा । अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा ॥
दो०—मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु ।
सत्य-सध-रघुबर-बचन सुनि भा सुखी समाजु । २६५॥

सुर गन-सहित सभय[५] सुरराजू । सोचहिं चाहत होन अकाजू[६] ॥
बनत उपाय करत कछु नाहीं । रामसरन सब गे मन माहीं ॥
बहुरि बिचारि परसपर कहहीं । रघुपति भगत-भगति बस अहहीं[७] ॥
सुधि करि अबरीप दुरवासा । भे सुर, सुरपति निपट निरासा ॥
सहे सुरन्ह बहु काल बिपादा । नरहरि किए प्रगट प्रहलादा† ॥
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा । अब सुर-काज भरत के हाथा ॥

---

१ माया २ सम्पूर्ण ३ विघ्न का बोझ ४ बहेलिया इत्यादि ५ स + भय = डरा हुआ ६ काम बिगड़ना ७ "भरत भक्त हैं उन्हीं के अनुकूल राम चलेंगे" यह सोचकर ।

† हिरण्यकश्यप के पुत्र प्रहलाद जन्म से हरिभक्त थे । वह समझते थे कि ईश्वर सर्वत्र और रक्षक है । पिता के दारुण दुःख देने पर भी भक्ति न छोड़ी अन्त में पिता तलवार ले मारने दौड़ा । खम्भ में से नरसिंह रूप हरि निकले और दैत्यराज को मारडाला ।

मात उपाउ न देखिअ देवा। मानत रामु सुसेवक सेवा ॥
प्रेम सिमरहु सब भरतहि निज गुन सील राम बस करतहि।

दो०—सुनि सुर मत सुरगुरु[1] कहेउ भल तुम्हार बड़भागु।
सकल-सुमंगल मूल जग, भरत चरन अनुरागु ॥२६६॥

सीतापति - सेवक - सेवकाई। कामधेनु सत सरिस सुहाई ॥
भरतभगति तुम्हरे मन आई। तजहु सोचु बिधि बात बनाई ॥
देखु देवपति भरतप्रभाऊ। सहज सुभाय बिबस रघुराऊ ॥
मन थिर[2] करहु देव डरु नाहीं। भरतहिं जानि रामपरिछाहीं ॥
सुनि सुरगुर सुर संमत सोचू। अंतरजामी प्रभुहि सँकोचू ॥
निज सिर भार भरतु जिअ जाना। करत कोटि बिधि उर अनुमाना ॥
करि बिचारु मन दीन्ही ठीका[4]। रामरजायसु आपन नीका ॥
निज पन[5] तजि राखेउ पनु मोरा। छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा ॥

दो०—कीन्ह अनुग्रह[7] अमित अति सब बिधि सीतानाथ।
करि प्रनामु बोले भरतु जोरि जलज-जुग हाथ ॥२६७॥

कहउँ कहावउँ का अब स्वामी। कृपा अंबुनिधि अंतरजामी ॥
गुर प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कलपित सूला ॥
अपडर डरेउँ न सोच समूले[9]। रबिहि न दोषु देव दिसि-भूले[10] ॥
मोर अभागु मातु कुटिलाई। बिधि गति बिषम काल कठिनाई ॥
पाउँ रोपि सब मिलि मोहि घाला[11]। प्रनतपाल पन आपन पाला[12] ॥
यह नइ रीति न राउरि होई। लोकहु बेद बिदित नहिं गोई[13] ॥
जगु अनभल, भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाईं ॥

१ देवताओं के गुरु (बृहस्पति)। २ (स्थिर) धीरज धरो। ३ विचार ४ निश्चय किया ५ भलाई है ६ प्रण, पैज ७ कृपा ८ दोनों कमलरूपी हाथ ९ सोच का कारण नहीं है १० दिशा भूल होने पर ११ नष्ट किया १२ शरणागत पालक १३ छिपी हुई।

दोपु देहिं जननिहि जड तेई । जिन्ह गुर-साधु सभा नहिं सेई ॥
दो०—मिटिहहिं पाप प्रपंच[१] सब अखिल[२] अमंगल भार[३] ।
लोक-सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार ॥२६४॥

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउरि राखी ॥
तात कुतरक करहु जनि जाएँ । वैर प्रेम नहिं दुरइ दुराएँ ॥
मुनिगन निकट विहँग मृग जाहीं । बाधक बधिक[४] बिलोकि पराहीं ॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना । मानुप-तनु गुन-ग्यान-निधाना ॥
तात तुम्हहिं मैं जानउँ नीके । करउँ काह असमंजस जी के ॥
राखेउ राय सत्य मोहि त्यागी । तनु परिहरेउ प्रेमपन लागी ॥
तासु बचन मेटत मन सोचू । तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू ॥
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा । अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा ॥
दो०—मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु ।
सत्य-सघ रघुबर-बचन सुनि भा सुखी समाजु ॥ २६५॥

सुर गन-सहित सभय[५] सुरराजू । सोचहिं चाहत होन अकाजू[६] ॥
बनत उपाय करत कछु नाहीं । रामसरन सब गे मन माहीं ॥
बहुरि विचारि परसपर कहहीं । रघुपति भगत-भगति-बस अहहीं ॥
सुधि करि अंबरीष दुरबासा । भे सुर, सुरपति निपट निरासा[७] ॥
सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा । नरहरि किए प्रगट प्रहलादा[†] ॥
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा । अब सुर-काज भरत के हाथा ॥

---

१ माया २ सम्पूर्ण ३ विघ्न का बोझ ४ बहेलिया इत्यादि ५ स+भय = डरा हुआ ६ काम बिगडना ७ "भरत भक्त हैं उन्हीं के अनुकूल राम चलेंगे" यह सोचकर ।

† हिरण्यकश्यप के पुत्र प्रहलाद जन्म से हरिभक्त थे । वह समझते थे कि ईश्वर सर्वत्र और रक्षक है । पिता के दारुण दुख देने पर भी भक्ति न छोडी अन्त मे पिता तलवार ले मारने दौडा । खम्भ में से नरसिंह रूप हरि निकले और दैत्यराज को मारडाला ।

भरतवचन सुचि सुनि सुर हरषे । साधु सराहि सुमन सुर बरषे ॥
असमंजसबस अवधनिवासी । प्रमुदित[1] मन तापस-बनबासी ॥
चुपहि रहे रघुनाथ सँकोची । प्रभुगति देखि सभा सब सोची ॥
जनकदूत तेहि अवसर आए । मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाए ॥
करि प्रनाम तिन्ह रामु निहारे । बेषु देखि भए निपट दुखारे[2] ॥
दूतन्ह मुनिवर बूझी बाता । कहहु बिदेह भूप कुसलाता ॥
सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा । बोले चर बर[3] जोरें हाथा ॥
बूझब राउर सादर साईं । कुसलहेतु सो भयेउ गोसाईं ॥

दो०—नाहिं त कोसलनाथ कें, साथ कुसल गइ नाथ ।
मिथिला[4] अवध बिसेष ते जगु सब भयेउ अनाथ ॥२७१॥

कोसलपति गति[5] सुनि जनकौरा[6] । भे सब लोक सोकबस बौरा ॥
जेहि देखे तेहि समय बिदेहू । नामु सत्य अस लाग न केहू ॥
रानि कुचालि सुनत नरपालहि । सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहि ॥
भरत राज रघुबर - बन - बासू । भा मिथिलेसहि हृदय हराँसू[7] ॥
नृप बूझे बुध-सचिव समाजू । कहहु बिचारि उचित का आजू ॥
समुझि अवध असमंजस दोऊ । चलिअ कि रहिअ न कह कछु कोऊ ॥
नृपहि धीर धरि हृदय बिचारी । पठए अवध चतुर चर[8] चारी ॥
बूझि भरत सतिभाउ कुभाऊ । आयेहु बेगि न होइ लखाऊ[9] ॥

दो०—गए अवध चर भरतगति, बूझि देखि करतूति ।
चले चित्रकूटहि भरत, चार चले तिरहूति[10] ॥२७२॥

दूतन्ह आइ भरत कै करनी । जनकसमाज जथामति बरनी ॥
सुनि गुर परिजन सचिव महीपति । भे सब सोच सनेह बिकल अति ॥

---

१ प्रसन्न २ अत्यन्त दुखी हुए ३ चतुर दूत ४ जनकपुरी ५ राजा दशरथ की गति ६ जनकपुरी के लोग ७ (हास) दुख ८ दूत ९ किसी को ज्ञात न हो १० जनकपुरी ।

देव देव - तरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ॥[1]
दो०—जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समनि[2] सब सोच।
मांगत अभिमत पाव जग राउ रंक भल पोच[3]॥२६८॥
लखि सब विधि गुर-स्वामी सनेहू। मिटेउ छोभ नहिं मन संदेहू॥
अब करुनाकर कीजिअ सोई। जन हित प्रभुचित[4] छोभ न होई॥
जो सेवकु साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची[5]॥
सेवकहित साहिब - सेवकाई। करइ सकल सुख लोभ बिहाई[6]॥
स्वारथु नाथ फिरें सबही का। किएँ रजाइ कोटि विधि नीका॥
एह स्वारथ - परमारथ - सारू। सकल सुकृत[7] फल सुगति सिंगारू॥
देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मनमाना॥
दो०—सानुज पठइअ मोहिं बन कीजिअ सबहिं सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलउँ मैं साथ॥२६९॥
नतरु जाहिं बन तीनिउँ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई॥
जेहि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुनासागर कीजिअ सोई॥
देव दीन्ह सब मोहि सिरभारू। मोरे नीति न धरम बिचारू॥
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू॥
उतरु देइ सुनि स्वामि-रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई॥
अस मैं अवगुन-उदधि-अगाधू[8]। स्वामि-सनेह सराहत[9] साधू॥
अब कृपाल मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाइ न पावा॥
प्रभु पद-सपथ कहउ सतिभाऊ-जग मंगल हित एक उपाऊ॥
दो०—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट-अवरेव[10]॥२७०॥

---

१ कभी किसी के प्रतिकूल नहीं होता २ नष्ट करने वाली है ३ नीच ४ आपके हृदय में ५ नीच ६ छोड़कर ७ पुण्य ८ बुराइयों का अथाह समुद्र हूं ९ सराहना करते हैं १० अनुचित उल्लङ्घन।

लगे कहन उपदेस अनेका । सहित धरम नय बिरति बिबेका॥
कौसिक कहि कहि कथा पुरानी । समुझाई सब सभा सुबानी ॥
तब रघुनाथ कौसिकहिं कहेऊ । नाथ कालि जल बिनु[१] सब रहेऊ॥
मुनि कह उचित कहत रघुराई । गयउ बीति दिन पहर अढाई ॥
रिषि रुख लखि कह तिरहुतिराजू । इहाँ उचित नहि असन अनाजू[२] ॥
कहा भूप भलि सबहि सुहाना । पाइ रजायसु चले नहाना ॥

दो०—तेहि अवसर फल फूल दल, मूल अनेक प्रकार ।
लै आए बनचर बिपुल, भरिभरि काँवरि भार ॥२७९॥

कामद[३] भे गिरि रामप्रसादा । अवलोकत अपहरत[४] बिषादा॥
सर सरिता बन भूमि बिभागा । जनु उमगत आनँद अनुरागा ॥
बेलि बिटप सब सफल सफूला । बोलत खग मृग अलि[५] अनुकूला[६] ॥
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू । त्रिबिध समीर[७] सुखद सब काहू ॥
जाइ न बरनि मनोहरताई । जनु महि करति जनक पहुनाई॥
तब सब लोग नहाइ नहाई । राम-जनक-मुनि आयसु पाई ॥
देखि देखि तरुबर अनुरागे । जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥
दल फल मूल कंद बिधि नाना । पावन[८] सुन्दर सुधासमाना ॥

दो०—सादर सब कहँ रामगुरु, पठए भरि भरि भार ।
पूजि पितर सुर अतिथि गुर लगे करन फलहार[९] ॥२८०॥

एहि बिधि बासर बीते चारी । रामु निरखि नरनारि सुखारी ॥
दुहुँ समाज असि रुचि मन माहीं । बिनु सिय राम फिरब भल नाहीं ॥
सीताराम संग बनबासू । कोटि अमर पुर-सरिस सुपासू ॥
परिहरि लषन राम बैदेही । जेहि घरु भाव बाम बिधि तेही॥
दाहिन दइउ होइ जब सबही । रामसमीप बसिअ बन तबही ॥

१ निर्जल, भूखे प्यासे २ अन्न का भोजन ३ इच्छा पूर्ण करने वाला ४ दूर कर देता है ५ भौंरा ६ सुहावने ७ हवा ८ पवित्र ९ फलों का आहार ।

धरि धीरजु करि भरत बड़ाई । लिए सुभट साहनी[1] बोलाई ॥
पुर पुर देस राखि रखवारे । हय गय रथ बहु जान[2] सँवारे ॥
दुघरी[3] साजि चले ततकाला । किअ बिस्रामु न मग महिपाला ॥
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा । चले जमुन उतरन सबु लागा ॥
खबरि लेन हम पठए नाथा । तिन्ह कहि अस महि नायेउ माथा ॥
साथ किरात छ सातक दीन्हे । मुनिबर तुरत बिदा चर कीन्हे ॥

दो०—सुनत जनक आगवनु सबु, हरषेउ अवध समाजु ।
रघुनंदनहि सकोचु बड़, सोच बिबस सुरराजु ॥२७३॥

गरै गलानि[4] कुटिल कैकेई । काहि कहइ केहि दूषनु देई ॥
अस मन आनि मुदित नरनारी । भयेउ बहोरि रहब दिन चारी ॥
एहि प्रकार गत बासर[5] सोऊ । प्रात नहान लाग सब कोऊ ॥
करि मज्जन पूजहि नरनारी । गनपति गौरि पुरारि[6] तमारी[7] ॥
रमा रमन-पद[8] बंदि बहोरी । बिनवहि अंजुलि अंचल जोरी ॥
राजा राम जानकी रानी । आनँद अवधि अवध रजधानी ॥
सुबस बसउ फिरि सहित समाजा । भरतहि रामु करहु जुबराजा ॥
एहि सुख सुधा सींचि सब काहू । देव देहु जग-जीवन लाहू ॥

दो०—गुरसमाज भाइन्ह सहित, रामराजु पुर होउ ।
अछत राम राजा अवध, मरिअ माँग सब कोउ ॥२७४॥

सुनि सनेहमय पुर-जन-बानी । निंदहिं जोग बिरति[9] मुनि ग्यानी ।
एहि बिधि नित्य करम करि पुरजन । रामहिं करहिं प्रनामु पुलकि तन ॥
ऊँच नीच मध्यम नर नारी । लहहिं दरसु निज निज अनुहारी[10] ॥
सावधान[11] सबही सनमानहिं । सकल सराहत कृपानिधानहिं ॥

१ सेनापात २ सवारियों ३ द्विघटिका मुहूर्त ४ सकोच मे गली जाती है ५ दिन बात गया ६ पुर+अरि=महादेव ७ तम=अंधेरा+अरि=वैरी) सूर्य ८ लक्ष्मी के स्वामी के पद ९ वैराग्य १० अनुकूल ११ सावधानता से।

लगे कहन उपदेस अनेका । सहित धरमनय विरति विवेका॥
कौसिक कहि कहि कथा पुरानी । समुझाई सब सभा सुबानी ॥
तब रघुनाथ कौसिकहिं कहेऊ । नाथ कालि जल बिनु सब रहेऊ[1]
मुनि कह उचित कहत रघुराई । गयेउ बीति दिन पहर अढाई ॥
रिषिरुख लखि कह तिरहुतिराजू । इहाँ उचित नहिं असन-अनाजू[2]॥
कहा भूप भलि सबहिं सुहाना । पाइ रजायसु चले नहाना ॥

दो०—तेहि अवसर फल फूल दल, मूल अनेक प्रकार ।
लै आए बनचर बिपुल, भरिभरि काँवरि भार ॥२७९॥

कामद[3] भे गिरि रामप्रसादा । अवलोकत अपहरत[4] बिषादा॥
सर सरिता बन भूमि बिभागा । जनु उमगत आनँद अनुरागा ॥
बेलि बिटप सब सफल सफूला । बोलत खग मृग अलि अनुकूला[5]॥
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू । त्रिबिध समीर[6] सुखद सब काहू ॥
जाइ न बरनि मनोहरताई । जनु महि करति जनक पहुनाई॥
तब सब लोग नहाइ नहाई । राम जनक-मुनि-आयसु पाई ॥
देखि देखि तरुवर अनुरागे । जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥
दल फल मूल कंद बिधि नाना । पावन[7] सुन्दर सुधासमाना ॥

दो०—सादर सब कहँ रामगुरु, पठए भरि भरि भार ।
पूजि पितर सुर अतिथि गुरु लगे करन फलहार[8] ॥२८०॥

एहि बिधि बासर बीते चारी । रामु निरखि नरनारि सुखारी ॥
दुहुँ समाज असि रुचि मन माहीं । बिनु सिय-राम फिरब भल नाहीं ॥
सीताराम संग बनबासू । कोटि अमर-पुर-सरिस सुपासू ॥
परिहरि लखन-राम-बैदेही । जेहि घरु भाव बाम बिधि तेही॥
दाहिन दइउ होइ जब सबही । रामसमीप बसिअ बन तबहीं ॥

---

१ याम २ अन्न का भोजन ३ इच्छा पूर्ण करने वाला
५ सुहावने ६ हवा ७ पवित्र ८ फलों का आहार ।

आस्रम-उदधि[१] मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई।
सोक बिकल दोउ राज-समाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा।
भूप-रूप-गुन-सील सराही। रोवहिं सोकसिंधु अवगाही[२]।

छंद—अवगाहि सोक-समुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हों कहा।
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथ कोउ जो तरि सकइ सरित सनेह की॥

सो०—किए अमित[३] उपदेस, जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरन्ह।
धीरजु धरिअ नरेस, कहेउ बसिष्ठ बिदेहसन॥२७७॥

जासु ग्यान रबि भवनिसि[४] नासा। बचन किरन मुनि कमल-बिकासा।
तेहि कि मोह ममता निअराई। यह सिय-राम-सनेह बड़ाई।
बिषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने।
राम-सनेह-सरस[६] मन जासू। साधु सभा बड़ आदर तासू।
सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू। करनधार[७] बिनु जिमि जल-जानू[८]।
मुनि बहु बिधि बिदेह समुझाए। रामघाट सब लोग नहाए।
सकल-सोक-संकुल नरनारी। सो बासर बीतेउ बिनु बारी।
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कवन बिचारू।

दो०—दोउ समाज निमिराज रघु, राज-नहाने प्रात।
बैठे सब बट बिटप तर, मन मलीन कृसगात[९]॥२७८॥

जे महिसुर दसरथ-पुर-बासी। जे मिथिला पति नगर निवासी।
हंस-बंस-गुर जनक पुरोधा[१०]। जिन्ह जगु मगु परमारथु सोधा।

---

१ आश्रमरूपी समुद्र २ डूब रहे हैं ३ बहुत ४ संसार रूपी रात्रि ५ पास आ सकती है ६ राम के स्नेह-जल से भरा हुआ ७ मल्लाह ८ नाव ९ दुबले शरीर वाले १० जनक के पुरोहित, शतानन्द जी।

* आश्रमरूप समुद्र जो शान्तरस रूपी जल से भरा हुआ था, सेना रूप नदी के मिलने से अशान्त होगया अर्थात् आश्रम में उथल पुथल मच गई।

मोह-मगन मति नहिं विदेह की । महिमा[1] सिय रघुबर-सनेह की ॥
दो०—सिय पितु-मातु-सनेह-बस, बिकल न सकी सँभारि ।
धरनिसुता धीरजु धरेउ, समउ सुधरमु बिचारि ॥२८७॥
तापसबेष जनक सिय देखी । भयेउ प्रेम परितोष बिसेषी ॥
पुत्र पवित्र किए कुल दोऊ । सुजस धवल[2] जगु कह सब कोऊ ॥
जिति सुरसरि कीरतिसरि तोरी । गवन कीन्ह बिधि अंड करोरी ॥
गंग अवनिथल तीनि बड़ेरे* । एहि किए साधु समाज घनेरे ॥
पितु कह सत्य सनेह सुबानी । सीय सकुच महुँ मनहुँ समानी ॥
पुनि पितु मातु लीन्हि उरलाई । सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई ॥
कहति न सीय सकुचि मन माहीं । इहाँ बसब रजनी भल नाहीं ॥
लखि रुख रानि जनायेउ राऊ । हृदय सराहत सीलु सुभाऊ ॥
दो०—बार बार मिलि भेंटि सिय, बिदा कीन्हि सनमानि ।
कही समय सिर भरत गति, रानि सुबानि सयानि ॥२८८॥
सुनि भूपाल भरत ब्यवहारू । सोन सुगंध सुधा ससि सारू ॥
मूँदे सजल नयन पुलके तन । सुजसु सराहन लगे मुदित मन ॥
सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि । भरतकथा भव-बंध[3] बिमोचनि ॥
धरम राजनय ब्रह्म बिचारू । इहाँ जथामति मोर प्रचारू ॥
सो मति मोर भरत महिमाही । कहइ काह छलि छुअत न छाहीं ॥

एक बार भगवान् से उनकी माया के देखने को कहा । एक दिन अचानक समुद्र बढ़ने लगा और चारों ओर जल ही जल होगया । मुनि को तैरते तैरते एक बरका वृक्ष मिला उस पर चढ़ गये । वृक्ष के पत्ते पर एक बालक पड़ा था । उसकी साँस के साथ ऋषि भीतर घुस गये और वहाँ सृष्टि देखने लगे । जब थोड़ी देर बाहर आये तो न जल ही था न बालक ।

1 प्रभुता 2 श्वेत, उज्ज्वल 3 संसार के बन्धन (आवागमन इत्यादि)
* गंगा पर हरद्वार प्रयाग और समुद्रसंगम तीन बड़े स्थान हैं ।

लखि सनेह सुनि बचन विनीता। जनक प्रिया गहि पाय पुनीता॥
देवि उचित असि विनय तुम्हहारी। दसरथ घरिनि[१] राम-महतारी॥
प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अगिनि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं।
सेवक राउ करम मन बानी। सदा सहाय महेस भवानी॥
रउरे[२] अंग जोगु जग को है। दीप सहाय कि दिनकर[३] सोहै॥
रामु जाइ बन करि सुर-काजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥
अमर नाग नर राम-बाहु-बल। सुख बसिहहिं अपने अपने थल॥
यह सब जागबलिक कहि राखा। देवि न होइ मुधा[४] मुनि भाखा॥

दो०—अस कहि पग-परि प्रेम अति, सियहित विनय सुनाइ।
सिय समेत सियमातु तब, चली सुआयसु पाइ॥२८६॥

प्रिय परिजनहिं मिली बैदेही। जो जेहि जोगु भाँति तेहि तेही॥
तापसबेष जानकी देखी। भा सब बिकल बिषाद बिसेखी॥
जनक राम-गुर-आयसु पाई। चले थलहिं सिय देखी आई॥
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन प्रेम प्रान की॥
उर उमगेउ अवुधि अनुरागू। भयेउ भूपमनु मनहुँ प्रयागू॥
सिय सनेह बटु[५] बाढत जोहा। तापर राम-प्रेम-सिसु सोहा॥*
‡चिरजीवी-मुनि[६] ग्यान विकल जनु। बूडत लहेउ बालअवलंबनु[७]।

---

१ दशरथ की रानी २ आपके ३ (दिन + कर) सूर्य ४ असत्य ५ बट वृक्ष ६ मार्कण्डेय-मुनि ७ बालमुकुन्द का सहारा।

*जब महाप्रलय होती है तो समुद्र उमड कर सब जगह जल ही जल कर देते हैं—पृथ्वी उसमें डूब जाती है—प्रयाग का अक्षयबट बढकर नहीं डूबता। उस बट के पत्ते पर ईश्वर बालरूप धरके रहता है। जनक के हृदय पर यही उपमा घटाई है। अर्थात् अनुराग समुद्र उमडा, राजा का मन प्रयाग, उसमें सीता का स्नेह बट और राम प्रेम बालमुकुन्द हुआ।

‡मारकण्डेय अंगिरा के वंशज थे। ये तपस्या के बल से अमर होगए। इन्होंने

बिबुधबिनय सुनि देबि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी ॥
मो सन कहहु भरत-मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू ॥
बिधि-हरि-हर माया बड़ी भारी। सोउ न भरतमति सकइ निहारी ॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी। चाँदिनि कर कि चंडकर चोरी ॥
भरतहृदय सिय-राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनिप्रकासू ॥
अस कहि सारद गइ बिधिलोका। बिबुध बिकल निसि मानहुँ कोका ॥
दो०—सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमन्त्र कुठाटु।
रचि प्रपंचु माया प्रबल भय भ्रम अरति[1] उचाटु[2] ॥२९३॥
करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सबु काजु अकाजू ॥
गए जनक रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबि कुल-दीपा[3] ॥
समय समाज धरम अबिरोधा। बोले तब रघु बंस पुरोधा ॥
जनक भरत संबाद सुनाई। भरत कहाउत कही सुहाई ॥
तात राम जस आयसु देहू। सो सबु करइ मोर मत एहू ॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी ॥
बिद्यमान[4] आपुन मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू[5] ॥
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई ॥
दो०—रामसपथ सुनि मुनि जनकु सकुचे सभासमेत।
सकल बिलोकत भरत मुखु बनइ न ऊतरु देत ॥२९८॥
सभा सकुचबस भरत निहारी। रामबंधु धरि धीरज भारी ॥
कुसमउ देखि सनेहु सँभारा। बढ़त बिंधि जिमि घटज[6] निवारा* ॥

१ अप्रेम २ जी ऊबना ३ सूर्य कुल के दीपक ४ मौजूद ५ बुरा ६ अगस्त।
* एक समय सूर्य का तेज रोकने को विन्ध्याचल बढ़ने लगा। उसके रोकने को कोई उपाय न देख कर देवताओं ने उसके गुरू अगस्त मुनि को उसके पास भेजा। ऋषि को देख कर विन्ध्य ने साष्टांग प्रणाम किया और प्रार्थना की कि मेरे लिये उचित आज्ञा कीजिये। ऋषि ने कहा जब तक मैं दक्षिण दिशा से न लौटूं तब तक तू ऐसा ही पड़ा रह। आज्ञा देकर वे फिर न लौटे।

लखि सनेह सुनि वचन विनीता । जनक प्रिया गहि पाय पुनीता ॥
देवि उचित असि विनय तुम्हारी । दसरथ घरिनि[१] राम-महतारी ॥
प्रभु अपने नीचहु आदरहीं । अगिनि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं ॥
सेवक राउ करम-मन बानी । सदा सहाय महेस-भवानी ॥
रउरे[२] अंग जोगु जग को है । दीप सहाय कि दिनकर[३] सोहै ॥
रामु जाइ बन करि सुर-काजू । अचल अवधपुर करिहहिं राजू ॥
अमर नाग नर राम-बाहु-बल । सुख बसिहहिं अपने अपने थल ॥
यह सब जागबलिक कहि राखा । देवि न होइ मुधा[४] मुनि भाखा ।

दो०—अस कहि पग-परि प्रेम अति सियहित विनय सुनाइ ।
सिय समेत सियमातु तब, चली सुआयसु पाइ ॥२८६॥

प्रिय परिजनहिं मिली वैदेही । जो जेहि जोगु भाँति तेहि तेही ।
तापसवेष जानकी देखी । भा सब विकल बिषाद विसेखी ॥
जनक राम-गुरु-आयसु पाई । चले थलहिं सिय देखी आई ॥
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी । पाहुनि पावन प्रेम-प्रान की ॥
उर उमगेउ अवुधि अनुरागू । भयेउ भूपमनु मनहुँ प्रयागू ॥
सिय सनेह बटु[५] बाढत जोहा । तापर राम-प्रेम-सिसु सोहा* ॥
‡चिरजीवी-मुनि[६] ग्यान विकल जनु । बूडत लहेउ बालअवलम्बनु[७] ॥

---

१ दशरथ की रानी २ आपके ३ (दिन + कर) सूर्य ४ असत्य ५ बट वृक्ष ६ मार्कण्डेय-मुनि ७ बालमुकुन्द का सहारा ।

*जब महाप्रलय होती है तो समुद्र उमड़ कर सब जगह जल ही जल कर देते हैं—पृथ्वी उसमें डूब जाती है—प्रयाग का अक्षयवट बढ़कर नहीं डूबता । उस वट के पत्ते पर ईश्वर बालरूप धरके रहता है । जनक के हृदय पर यही उपमा घटाई है । अर्थात् अनुराग समुद्र उमडा, राजा का मन प्रयाग, उसमें सीता का स्नेह वट और राम प्रेम बालमुकुन्द हुआ ।

‡मारकण्डेय अंगिरा के वंशज थे । ये तपस्या के बल से अमर होगए । इन्होंने,

भरत प्रीति-नति बिनय बड़ाई । सुनत सुखद बरनत कठिनाई ॥
जासु बिलोकि भगति लवलेसू । प्रेममगन मुनिगन मिथिलेसू ॥
महिमा तासु कहइ किमि तुलसी । भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी ॥
आपु छोटि महिमा बड़ि जानी । कबिकुल-कानि[१] मानि सकुचानी ॥
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई । मतिगति बाल बचन की नाईं ॥

दो०—भरत बिमल जसु बिमल बिधु, सुमति चकोर-कुमारि ।
उदित बिमल जनहृदय नभ, एकटक रही निहारि ॥२०४॥

भरत सुभाउ न सुगम निगम हूँ । लघुमति चापलता[२] कबि छमहूँ ॥
कहत सुनत सतिभाउ भरत को । सीय-राम पद होइ न रत को ॥
सुमिरत भरतहिं प्रेमु राम को । जेहि न सुलभु तेहि सरिस बामको ॥
देखि दयालु दसा सबही की । राम सुजान जान जन जी की ॥
धरमधुरीन धीर नयनागर । सत्य-सनेह-सील-सुख-सागर ॥
देसु कालु लखि समउ समाजू । नीति-प्रीति-पालक रघुराजू ॥
बोले बचन बानि-सरबसु से । हित परिनाम सुनत ससिरसु से[३] ॥
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना । लोक-बेद बिद[४] परमप्रबीना ॥

दो०—करम बचन मानस[५] बिमल, तुम्ह समान तुम्ह तात ।
गुर समाज लघु बधु-गुन, कुसमय किमि कहि जात ॥२०५॥

जानहु तात तरनि-कुल-रीती । सत्यसंध पितु कीरति प्रीती ॥
समउ समाजु लाज गुरजन की । उदासीन हित अनहित[६] मन की ॥
तुम्हहिं बिदित सबही कर करमू । आपन मोर परम हित धरमू ॥
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा । तदपि कहउँ अवसर अनुसारा ॥
तात तात बिनु बात हमारी । केवल-कुल-गुरु कृपा सँभारी ।

[१] मर्यादा [२] ढिठाई [३] अमृत सा [४] लोक और वेद के जानने वाले [५] मन [६] शत्रु [७] अर्थात् सुन्दर और सार्थक ।

कौसिकादि मुनि सचिवसमाजू । ग्यान-अंबु-निधि[1] आपुन आजू ॥
सिसु सेवकु आयसु-अनुगामी[2] । जानि मोहि सिख देइअ स्वामी ॥
एहिं समाज थल बूझब राउर । मौन[3] मलिन मैं बोलब बाउर[4] ॥
छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता । छमब तात लखि बाम[5] बिधाता ॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना । सेवाधरमु कठिन जगु जाना ॥
स्वामि धरम स्वारथहिं बिरोधू । बइर-अंध[6] प्रेमहिं न प्रबोधू ॥

दो०—राखि रामरुख धरमुब्रतु, पराधीन मोहि जानि ।
सब के सम्मत[7] सर्वहित, करिअ प्रेम पहिचानि ॥२९४॥

भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ । सहित समाज सराहत राऊ ॥
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे । अरथ अमित अति आखर[8] थोरे ॥
ज्यों मुखु मुकुरु[9], मुकुरु निजपानी । गहि न जाइ अस अदभुत बानी ॥
भूपु भरतु मुनि साधु-समाजू । गे जहँ बिबुध-कुमुद-द्विज†राजू[10] ।
सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा । मनहुँ मीनगन नवजल-जोगा ॥
देव प्रथम कुल गुर-गति देखी । निरखि बिदेह सनेह बिसेखी ॥
राम-भगति-मय भरतु निहारे । सुर स्वारथी हहरि हिय हारे ॥
सब कोउ राम प्रेममय पेखा । भए अलेख[11] सोच बस लेखा[12] ॥

दो०—राम सनेह-सकोच-बस, कह ससोच सुरराजु ।
रचहु प्रपंचहिं पंच मिलि, नाहिं त भयउ अकाजु ॥२९५॥

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही । देवि ! देव सरनागत पाही[13] ॥
फेरि भरतमति करि निज माया । पालु बिबुधकुल करि छलछाया ॥

---

१ ज्ञानरूपी समुद्र २ आज्ञाकारी ३ गूँगा ४ बावले की भाँति ५ प्रतिकूल ६ (बहिर) बधिर-अन्ध ७ सलाह ८ अक्षर ९ दर्पण १० देवतारूप कुमुद वन के लिये चन्द्रमा, ११ जो लिखने म न आवे १२ देवता १३ रक्षा करो ।

† द्विज, दोबार जन्म, द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) पक्षी, सर्प, दाँत और चन्द्रमा यह द्विज कहलाते हैं ।

भरत प्रीति-नति बिनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥
जासु बिलोकि भगति लवलेसू[1]। प्रेममगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहइ किमि तुलसी। भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी॥
आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबिकुल-कानि[2] मानि सकुचानी॥
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई। मतिगति बाल-बचन की नाईं॥

दो०—भरत बिमल जसु बिमल बिधु, सुमति चकोर-कुमारि।
उदित बिमल जनहृदय नभ, एकटक रही निहारि॥३०४॥

भरत सुभाउ न सुगम निगम हूँ। लघुमति चापलता[3] कबि छमहूँ॥
कहत सुनत सतिभाउ भरत को। सीय राम पद होइ न रत को॥
सुमिरत भरतहिं प्रेमु राम को। जेहि न सुलभु तेहि सरिस बाम को॥
देखि दयालु दसा सबही की। राम सुजान जान जन जी की॥
धरमधुरीन धीर नयनागर। सत्य-सनेह-सील-सुख-सागर॥
देसु कालु लखि समउ समाजू। नीति-प्रीति-पालक रघुराजू॥
बोले बचन बानि-सरबसु से*। हित परिनाम सुनत ससिरसु से[4]॥
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक-बेद बिद[5] परमप्रबीना॥

दो०—करम बचन मानस[6] बिमल, तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुर समाज लघु बधु गुन, कुसमय किमि कहि जात॥३०५॥

जानहु तात तरनि-कुल-रीती। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती॥
समउ समाजु लाज गुरजन की। उदासीन हित अनहित[7] मन की॥
तुम्हहिं बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू॥
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउँ अवसर अनुसारा॥
तात तात बिनु बात हमारी। केवल कुल-गुरु कृपा सँभारी॥

---

१ थोड़ा भी २ मर्यादा ३ चंचलता ४ अमृत सी मीठी ५ व्यवहार और वेद के जानने वाले ६ मन ७ वैरी। * सरस्वती के सर्वस्व के समान अर्थात् सुन्दर और सार्थक।

प्रभु-पद-कमल गहे अकुलाई । समउ सनेहु न सो कहि जाई ॥
कृपासिंधु सनमानि सुबानी । बैठाए समीप गहि पानी ॥
भरत-विनय सुनि देखि सुभाऊ । सिथिल सनेह सभा रघुराऊ ॥

छंद—रघुराउ सिथिल सनेहु साधु-समाज मुनि मिथिलाधनी ।
मन महुँ सराहत भरत भायप भगति की महिमा घनी[1] ॥
भरतहिं प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानस-मलिन[2] से ।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम-नलिन[3] से ॥

सो०—देखि दुखारी दीन, दुहुँ समाज नरनारि सब ।
मघवा[4] महामलीन मुएहिं मारि मंगल चहत ॥३०२॥

कपट-कुचाल-सीवँ सुरराजू । पर-अकाज-प्रिय आपन काजू ॥
काकसमान पाकरिपु[5] रीती । छली मलीन कतहुँ न प्रतीती ॥
प्रथम कुमति करि कपटु सकेला[6] । सो उचाटु[7] सबके सिर मेला[8] ॥
सुरमाया सब लोग बिमोहे[9] । रामप्रेम अतिसय न बिछोहे[10] ॥
भए उचाटबस मन थिर नाहीं । छन बन रुचि, छन सदन सुहाहीं ॥
दुबिध[11] मनोगति प्रजा दुखारी । सरित-सिंधु संगम जनु बारी ॥
दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं । एक एक सन मरमु न कहहीं ॥
लखि हिय हँसि कह कृपानिधानू । सरिस स्वान मघवान जुबानू[12] ॥

दो०—भरतु जनकु मुनिजन सचिव, साधु सचेत बिहाइ ।
लागि देव माया सबहिं, जथाजोगु जनु पाइ ॥३०३॥

कृपासिंधु लखि लोग दुखारे । निजसनेह सुर-पति-छल भारे ॥
सभा राउ गुर महिसुर मंत्री । भरतभगति सब कइ मति जंत्री ॥
रामहि चितवत चित्र लिखे से । सकुचत बोलत बचन सिखे से ॥

---

१ बहुत २ कपटी मन से ३ जैसे रात्रि आने पर कमल ४ इन्द्र ५ पाक राक्षस का बैरी, इन्द्र ६ जमा किया ७ उचाटन ८ चपेक दिया ९ मोहित किया १० दूर हुए ११ दुविधा, दुचित्तता, चिंता १२ स्वन् मघुवन् युवन् तीनों शब्द एक से हैं अत सबके स्वभाव भी समान ही हुए (यही आशय है) ।

कतहुँ निमज्जन[1], कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा[2]॥
कतहुँ बैठि मुनिआयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई॥
देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा। देहिं असीस मुदित वन देवा॥
फिरहिं गए दिनु पहर अढाई। प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई॥

दो०—देखे थलु तीरथ सकल, भरत पाँच दिन माँझ।
कहत सुनत हरि-हर सुजसु, गयेउ दिवस भइ साँझ॥३१३॥

भोर न्हाइ सब जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तिरहुति राजू॥
भल दिन आजु जान मन माहीं। रामु कृपाल कहत सकुचाहीं॥
गुर नृप भरत सभा अवलोकी[3]। सकुचिराम फिरि अवनि बिलोकी॥
सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची॥
भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेखी॥
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखी नाथ सकल रुचि मोरी॥
मोहि लगि सनहि सहेउ संतापू[4]। बहुत भाँति दुखु पावा आपू॥
अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई। सेवउँ अवध अवधि भरि जाई॥

दोहा०—जेहि उपाय पुनि पायँ जनु, देखइ दीनदयाल।
सो सिख देइअ अवधि लगि, कोसलपाल कृपाल॥३१४॥

पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेह सगाईं॥
राउर बदि[5] भल भव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परमपद-लाहू॥
स्वामि सुजानु जानि सब ही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की॥
प्रनतपालु पालहि सब काहू। देव दुहूँ दिसि ओर निबाहू॥
अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो। किए बिचारु न सोच खरोसो[6]॥
आरति मोर नाथ कर छोहू। दुहुँमिलि कीन्ह ढीठ हठि मोहू[7]॥
यह बड दोष दूरि करि स्वामी। तजि सकोच सिखइअ अनुगामी॥

---

१ स्नान करते हैं २ सुन्दर ३ देखी ४ दु:ख ५ आपका यहा कर ६ सदा थोडासा ७ मुझको बरबस ढीठ बना दिया (हठि का पाठान्तर भति)।

सानुज आपु अत्रि मुनि साधू। सहित गए जहँ कूप अगाधू॥
पावन पाथ पुन्य-थलु राखा। प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा॥
तात अनादि-सिद्ध[1] थल एहू। लोपेउ काल बिदित नहिं केहू[2]॥
तब सेवकन्ह सरस थलु देखा। कीन्ह सुजल हित कूप बिसेखा॥
बिधिबस भयेउ बिस्व उपकारू। सुगम अगम अति धरम-बिचारू॥
भरतकूप अब कहिहहिं लोगा। अति पावन तीरथ-जल जोगा॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी। होइहिं बिमल करम मन बानी॥

दो०—कहत कूप-महिमा सकल, गए जहाँ रघुराउ।
अत्रि सुनायेउ रघुबरहिं, तीरथ-पुन्य-प्रभाउ॥२११॥

कहत धरम इतिहास सप्रीती। भयेउ भोर निसि सो सुख बीती॥
नित्य निबाहि भरतु दोउ भाई। राम-अत्रि-गुर-आयसु पाई॥
सहित समाज साज सब सादे। चले राम बन अटन[3] पयादे॥
कोमल चरन चलत बिनु पनहीं। भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं॥
कुस कंटक काँकरी कुराईं[4]। कटुक[5] कठोर कुबस्तु दुराईं॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे। बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे॥
सुमन बरषि सुर घन करि छाँहीं। बिटप फूलि फल तृन मृदुताहीं[6]॥
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल रामप्रिय जानी॥

दो०—सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु[7], राम कहत जमुहात।
राम-प्रान-प्रिय भरत कहँ, यह न होइ बड़ि बात॥२१२॥

एहि बिधि भरतु फिरत बन माँहीं। नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं॥
पुन्य जलासय भूमि बिभागा। खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा॥
चारु बिचित्र पवित्र बिसेखी। बूझत भरतु दिब्य सब देखी॥
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ॥

---

१ अन + आदि (जिसके आदि का पता नहीं) सिद्ध २ किसी को ३ बन में घूमना ४ ठूँठ ५ कड़वी ६ नर्म होने से ७ साधारणतया।

कतहुँ निमज्जन[1], कतहुँ प्रनामा । कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा[2] ॥
कतहुँ बैठि मुनिआयसु पाई । सुमिरत सीय सहित दोउ भाई ॥
देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा । देहिं असीस मुदित बन देवा ॥
फिरहिं गए दिनु पहर अढाई । प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई ॥

दो०—देखे थलु तीरथ सकल, भरत पाँच दिन माँझ ।
कहत सुनत हरि-हर सुजसु, गयेउ दिवस भइ साँझ ॥३१३॥

भोर न्हाइ सब जुरा समाजू । भरत भूमिसुर तिरहुति राजू ॥
भल दिन आजु जान मन माहीं । रामु कृपाल कहत सकुचाहीं ॥
गुरु-नृप भरत सभा अवलोकी[3] । सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी ॥
सील सराहि सभा सब सोची । कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची ॥
भरत सुजान राम रुख देखी । उठि सप्रेम धरि धीर बिसेखी ॥
करि दंडवत कहत कर जोरी । राखी नाथ सकल रुचि मोरी ॥
मोहि लगि सहहिं सहेउ संतापू[4] । बहुत भाँति दुखु पावा आपू ॥
अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई । सेवउँ अवध अवधि भरि जाई ॥

दोहा०—जेहि उपाय पुनि पायँ जनु, देखइ दीनदयाल ।
सो सिख देइअ अवधि लगि, कोसलपाल कृपाल ॥३१४॥

पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं । सब सुचि सरस सनेह सगाईं ॥
राउर-बदि[5] भल भव दुख-दाहू । प्रभु बिनु बादि परमपद-लाहू ॥
स्वामि सुजानु जानि सब ही की । रुचि लालसा रहनि जन जी की ॥
प्रनतपालु पालहि सब काहू । देउ दुहूँ दिसि ओर निबाहू ॥
अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो । किए बिचारु न सोच खरोसो[6] ॥
आरति मोर नाथ कर छोहू । दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठ हठि मोहू[7] ॥
यह बड़ दोष दूरि करि स्वामी । तजि सकोच सिखइअ अनुगामी ॥

१ स्नान करते हैं २ सुन्दर ३ देखी ४ दुःख ५ आपका कहा कर, ६ पाइास्रा ७ मुझको अरवस ढीठ बना दिया (हठि का पाठान्तर,

सानुज आपु अत्रि मुनि साधू । सहित गए जहँ कूप अगाधू ॥
पावन पाथ पुन्य थलु राखा । प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा ॥
तात अनादि-सिद्ध[1] थल एहू । लोपेउ काल विदित नहिं केहू[2] ॥
तब सेवकन्ह सरस थलु देखा । कीन्ह सुजल हित कूप बिसेखा ॥
विधिबस भयेउ विस्व उपकारू । सुगम अगम अति धरम-बिचारू ॥
भरतकूप अब कहिहहिं लोगा । अति पावन तीरथ-जल जोगा ॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी । होइहिं बिमल करम मन बानी ॥

दो०—कहत कूप-महिमा सकल, गए जहाँ रघुराउ ।
अत्रि सुनायेउ रघुबरहिं, तीरथ-पुन्य-प्रभाउ ॥३११॥

कहत धरम इतिहास सप्रीती । भयेउ भोर निसि सो सुख बीती ॥
नित्य निबाहि भरतु दोउ भाई । राम अत्रि-गुर-आयसु पाई ॥
सहित समाज साज सब सादे । चले राम बन अटन[3] पयादे ॥
कोमल चरन चलत बिनु पनहीं । भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं ॥
कुस कंटक काँकरी कुराईं[4] । कटुक[5] कठोर कुवस्तु दुराईं ॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे । बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे ॥
सुमन बरपि सुर घन करि छाँहीं । बिटप फूलि फल तृन मृदुताहीं[6] ॥
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी । सेवहिं सकल रामप्रिय जानी ॥

दो०—सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु[7], राम कहत जमुहात ।
राम-प्रान प्रिय भरत कहँ, यह न होइ बड़ि बात ॥३१२॥

एहि,बिधि भरतु फिरत बन माँहीं । नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं ॥
पुन्य जलासय भूमि बिभागा । खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा ॥
चारु बिचित्र पवित्र बिसेखी । बूझत भरतु दिव्य सब देखी ॥
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ । हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ ॥

---

१ अन + आदि (जिसके आदि का पता नहीं) सिद्ध २ किसी को
३ बन में घूमना ४ ठूँठ ५ कड़वी ६ नर्म होने से ७ साधारणतया ।

सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी । अवधि आस सम जीवन जी की ॥
नतरु लखन सिय राम वियोगा । हहरि मरत सब लोग कुरोगा ॥
रामकृपा अवरेर[१] सुधारी[२] । बिबुधधारि[३] भइ गुनद गोहारी[४] ॥
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो । राम प्रेम रसु कहि न परत सो ॥
तन मन वचन उमग अनुरागा । धीरधुरधर धीरज त्यागा ॥
वारिजलोचन मोचत[५] वारी । देखि दसा सुरसभा दुखारी ॥
मुनिगन गुरु धुर[६] धीर जनक से । ग्यानअनल मन कसे कनक से[७] ॥
जे विरंचि निरलेप[८] उपाये । पदुमपत्र[९] जिमि जग जलजाये[१०] ॥

दो०—तेउ विलोकि रघुवर-भरत प्रीति अनूप अपार ।
भए मगन मन तन वचन सहित विराग विचार ।३१८॥

जहाँ जनक-गुर गति मति भोरी । प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी ॥
बरनत रघुवर भरत वियोगू । सुनि कठोर कवि जानिहि लोगू ॥
सो सकोच रस अकथ सुबानी । समउ सनेह सुमिरि सकुचानी ॥
भेंटि भरतु रघुवर समुझाए । पुनि रिपुदवन हरपि हिय लाए ॥
सेवक सचिव भरत-रुख पाई । निज निज काज लगे सब जाई ॥
सुनि दारुन दुखु दुहूँ समाजा । लगे चलन के साजन साजा ॥
प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई । चले सीस धरि रामरजाई ॥
मुनि तापस बन देव निहोरी । सब सनमानि बहोरि बहोरी ॥

दो०—लखनहि भेंटि प्रनामु करि, सिर धरि सिय पद धूरि ।
चले सप्रेम असीस सुनि, सकल सुमंगल मूरि ॥३१९॥

सानुज राम नृपहि सिर नाई । कीन्हि बहुत विधि विनय बड़ाई ॥
देव दयावस बड दुख पायेउ । सहित समाज काननहिं आयेउ ॥

---

१ बिगड़ी हुई २ सुधर जाती है ३ देवताओं की धारणा (इच्छा) ४ गुहार, रक्षार्थ जोर से बुलाना ५ छोड़ना ६ धुरधर ७ ज्ञानरूपी अग्नि से मन रूप सोने को तपाकर निर्दोष कर लिया था ८ माया से रहित ९ कमल के पत्ते की तरह । १० पानी से पैदा कमल ।

भरत विनय सुन सबहि प्रससी । खीर-नीर-बिबरन-गति[1] हसी ॥

दो०—दीनबन्धु सुनि बन्धु के, वचन दीन छलहीन ।
देस-काल अवसरु सरिस, बोले रामु प्रवीन ॥३१५॥

तात तुम्हारि मोरि परिजन की । चिंता गुरहिं नृपहि घर बनकी ॥
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू । हमहि तुम्हहि सपनेहुँ न कलेसू ॥
मोर तुम्हार परम पुरुषारथु । स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु ॥
पितु आयसु पालहि दुहुँ भाई । लोक वेद भल[2] भूप भलाई ॥
गुर पितु-मातु-स्वामि-सिख पाले । चलेहु कुमग पग परहिं न खाले ॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई । पालहु अवध अवधि भरिजाई ॥
देसु कोसु पुरजन परिवारू । गुरपद-रजहिं लाग छरु भारू[3] ॥
तुम्ह मुनि-मातु सचिव सिखमानी । पालेहु पुहुमि[4] प्रजा रजधानी ॥

दो०—मुखिया मुखु सो चाहिए, खान पान कहुँ एक ।
पाइल पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक ॥३१६॥

राज धरम सरबसु एतनोई । जिमि मन माँह मनोरथ गोई ॥
बन्धु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती । बिनु अधार मन तोषु न साँती ॥
भरत सील गुर सचिव समाजू । सकुच सनेह बिबस रघुराजू ॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही । सादर भरत सीस धरि लीन्ही ॥
चरनपीठ[6] करुना निधान के । जनु जुग जामिक[7] प्रजा प्रानके ॥
सपुट[8] भरत सनेह-रतन के । आखर जुग जनु जीवजतन[9] के ॥
कुल कपाट कर कुसल[10] करम के । बिमल नयन[11] सेवा सुधरम के ॥
भरत मुदित अवलंब लहे ते । अस सुख जस सिय राम रहेते ॥

दो०—माँगेउ बिदा प्रनामु करि, राम लिए उर लाइ ।
लोग उचाटे[12] अमर पति, कुटिल कुअवसर पाइ ॥३१७॥

---

१ दूध पानी के अलग करने की भांति २ पाठान्तर—दुइ ३ बड़ा बोझ ४ धरती ५—६ खड़ाऊँ ७ पहरुआ ८ ढक्कन ९ रक्षार्थ १० उत्तम ११ सुन्दर नेत्र १२ उचाटन किया ।

सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी। अवधि आस सम जीवन जी की॥
नतरु लखन सिय राम बियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा॥
रामकृपा अवरेब[1] सुधारी[2]। बिबुधधारि[3] भइ गुनद गोहारी[4]॥
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम-प्रेम-रसु कहि न परत सो॥
तन मन बचन उमग अनुरागा। धीरधुरधर धीरज त्यागा॥
बारिजलोचन मोचत[5] बारी। देखि दसा सुरसभा दुखारी॥
मुनिगन गुरु धुर[6] धीर जनक से। ग्यानअनल मन कसे कनक से[7]॥
जे बिरंचि निरलेप[8] उपाये। पदुमपत्र[9] जिमि जग जलजाये[10]॥

दो०—तेउ बिलोकि रघुबर-भरत प्रीति अनूप अपार।
भए मगन मन तन बचन सहित बिराग बिचार॥३१८॥

जहाँ जनक-गुरु गति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बडि खोरी॥
बरनत रघुबर-भरत बियोगू। सुनि कठोर कवि जानिहि लोगू॥
सो सकोच रस अकथ सुबानी। समउ सनेह सुमिरि सकुचानी॥
भेंटि भरतु रघुबर समुझाए। पुनि रिपुदवन हरषि हिय लाए॥
सेवक सचिव भरत-रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई॥
सुनि दारुन दुखु दुहूँ समाजा। लगे चलन के साजन साजा॥
प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई। चले सीस धरि रामरजाई॥
मुनि तापस बन देव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी॥

दो०—लखनहिं भेंटि प्रनामु करि, सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि, सकल सुमंगल मूरि॥३१९॥

सानुज राम नृपहि सिर नाई। कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई॥
देव दयावस बड दुख पायेउ। सहित समाज काननहिं आयेउ॥

---

१ बिगडी हुई २ सुधर जाती है ३ देवताओं की धारणा (इच्छा) ४ गुहार, रक्षार्थ जोर से बुलाना ५ छोडना ६ धुरधर ७ ज्ञानरूपी अग्नि से मन रूप सोने को तपाकर निर्दोष कर लिया था ८ माया से रहित ९ कमल के पत्ते के गुणद। १० पानी से पैदा कमल।

पुर पगु धारिअ देइ असीसा । कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा ।
मुनि महिदेव साधु सनमाने । बिदा किए हरि-हरसम जाने ।
सासुसमीप गए दोउ भाई । फिरे बंदि पग आसिष पाई ।
कौसिक बामदेव जाबाली । परिजन पुरजन सचिव सुचाली ।
जथाजोगु करि बिनय प्रनामा । बिदा किए सब सानुज रामा ।
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे । सब सनमानि कृपानिधि फेरे ।

दो०—भरत-मातु-पद बंदि प्रभु, सुचि सनेह मिलि भेंटि ।
बिदा कीन्हि सजि पालकी, सकुच सोच सब मेंटि ॥३२०॥

परिजन मातु पितहिं मिलि सीता । फिरी प्रान प्रिय प्रेम पुनीता ।
करि प्रनामु भेंटी सब सासू । प्रीति कहत कबि हिय न हुलासू[1] ।
सुनि सिख अभिमत आसिष पाई । रही सीय दुहुँ प्रीति समाई ।
रघुपति पटु पालकी मँगाई । करि प्रबोधु सब मातु चढ़ाई ।
बार बार हिलि मिलि दुहुँ भाई । सम सनेह जननी पहुँचाई ।
साजि बाजि गज बाहन नाना । भूप भरतदल कीन्ह पयाना ॥
हृदय राम सिय लषन समेता । चले जाहिं सब लोग अचेता[2] ॥
बसह[3] बाजि गज पसु हिय हारे । चले जाहिं परबस मन मारे ॥

दो० – गुर-गुरतिय-पद बंदि प्रभु, सीता लषन समेत ।
फिरे हरष बिसमय-सहित, आए परननिकेत ॥३२१॥

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू । चलेउ हृदय बड़ बिरह बिषादू ॥
कोल किरात भिल्ल बनचारी । फेरे फिरे जोहारि जोहारी ॥
प्रभु सिय लषन बैठि बट छाहीं । प्रिय-परिजन बियोग बिलखाहीं॥
भरत-सनेह-सुभाउ सुबानी । प्रिया अनुज सन कहत बखानी॥
प्रीति प्रतीति बचन मन करनी । श्रीमुख[4] राम प्रेमबस बरनी ॥
तेहि अवसर खग मृग जल मीना । चित्रकूट चर अचर मलीना ॥

---

१ हर्ष २ अ+चेत (चैतन्यता रहित) बेहोश ३ बैल ४ स्वयं ।

बिबुध बिलोकि दसा रघुबर की । बरषि सुमन कहि गति घर घर की ॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह भरोसो । चले मुदित मन डर न खरोसो ॥

दो०—सानुज सीयसमेत प्रभु, राजत परनकुटीर ।
भगति ग्यान बैराग जनु, सोहत धरे सरीर ॥३२२॥

मुनि महिसुर गुर भरत भुआलू । रामबिरह सब साजु बिहालू[1] ॥
प्रभु-गुन-ग्राम गुनत मन माहीं । सब चुपचाप चले मग जाहीं ॥
जमुना उतरि पार सबु भयेऊ । सो बासरु[2] बिनु भोजन गयेऊ ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू । रामसखा सब कीन्ह सुपासू[3] ॥
सई उतरि गोमती नहाए । चौथे दिवस अवधपुर आए ॥
जनक रहे पुर बासर चारी । राज-काज सब साज सँभारी ॥
सौंपि सचिव गुर भरतहि राजू । तिरहुति चले साजि सब साजू ॥
नगर-नारि नर गुर-सिख मानी । बसे सुखेन[4] राम रजधानी ॥

दो०—रामदरस लगि लोग सब, करत नेम उपवास ।
तजि तजि भूषन भोग सुख, जिअत अवधि की आस ॥३२३॥

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे । निज निज काज पाइ सिख-ओधे[5] ॥
पुनि सिख दीन्ह बोलि लघु भाई । सौंपी सकल मातु सेवकाई ॥
भूसुर बोलि भरत कर जोरे । करि प्रनाम बर बिनय निहोरे ॥
ऊँच नीच कारजु भल पोचू[6] । आयसु देब न करब सँकोचू ॥
परिजन पुरजन प्रजा बुलाए । समाधानु[7] करि सुबस[8] बसाए ॥
सानुज गे गुरगेह बहोरी । करि दंडवत कहत कर जोरी ॥
आयसु होइ त रहउँ सनेमा[9] । बोले मुनि तन पुलकि[10] सप्रेमा ॥
समुझब कहब करब तुम्ह जोई । धरमसारु[11] जग होइहि सोई ॥

---

१ घबड़ाये हुए २ दिन ३ आराम, सुभीता ४ सुख से ५ शिक्षानुसार काम करने लगे ६ बुरा ७ समझाकर सतुष्ट किया ८ अच्छी तरह ९ नियम और व्रत के साथ, १० रोमांचित होकर ११ धर्म का तत्त्व ।

पुलकि गात हिय सियरघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू॥
लषन राम सिय कानन बसहीं। भरत भवन बसि तप तनु कसहीं॥
दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू॥
सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं॥
परम पुनीत[1] भरत आचरनू[2]। मधुर मंजु मुद मंगल-करनू॥
हरन कठिन कलि-कलुष कलेसू[3]। महा-मोह निसि दलन दिनेसू[4]॥
पाप पुंज कुंजर-मृग-राजू। समन सकल संताप समाजू॥
जनरंजन[5] भंजन भवभारू[6]। रामसनेह सुधाकर सारू॥

छंद—सिय राम प्रेम-पियूष पूरन[7] होत जनम न भरत को।
मुनि-मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥
दुखदाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि रामसनमुख करत को॥

सो०—भरतचरित करि नेम तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय-राम पद प्रेम अवसि होइ भव रस बिरति॥३२६॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने
विमलविज्ञानवैराग्यसंपादनो नाम
द्वितीयः सोपानः समाप्तः।

---

[1] अत्यन्त पवित्र [2] भरत के आचरण [3] कलियुग के पापों और क्लेशों [4] सूर्य [5] भक्तों को प्रसन्न करने वाला [6] संसार की कठिनाइयों के नाशक [7] राम के प्रेम रूप अमृत से भरा हुआ।

१४ लोक—अतल, वितल सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तप लोक, सत्यलोक।

१४ विद्या—१ ब्रह्मज्ञान, २ रसायन, ३ श्रौतकथा, ४ वैद्यक, ५ ज्योतिष, ६ व्याकरण, ७ धनुर्विद्या, ८ जल में तैरना, ९ संगीत, १० नाटक, ११ अश्वारोहण, १२ कोकशास्त्र, १३ चोरी, १४ चतुरता।

४ वेद—ऋग्वेद यजुर्वेद, साम और अथर्वण।

४ उपवेद—१ ऋग्वेद का आयुर्वेद, २ यजुर्वेद का धनुर्वेद, ३ सामवेद का गान्धर्व, ४ अथर्वण वेद का स्थापत्य।

६ वेदाङ्ग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त, छन्द, ज्योतिष।

६ शास्त्र—सांख्य, योग, वेदान्त, मीमांसा न्याय, वैशेषिक।

१६ शृङ्गार—१ अङ्गशुचि, २ मंजन, ३ दिव्य वस्त्र, ४ महावर, ५ केश सँवारना, ६ माँग में सिन्दूर, ७ ठोढ़ी पर तिल, ८ माथे में बिन्दी, ९ मेंहदी, १० अरगजा लगाना, ११ भूषण, १२ सुगन्ध १३ मुख राग, १४ दंतराग, १५ अधरराग, १६ काजल।

६ रस—कटु, तीक्ष्ण, अम्ल, मधुर, कषाय, लवण।

सप्तऋषि—वशिष्ठ, अत्रि, कश्यप, विश्वामित्र, भरद्वाज, जमदग्नि, गौतम।

सप्तावरण—१ जल, २ पवन, ३ अग्नि, ४ आकाश, ५ अहंकार, ६ महत्तत्व, ७ प्रकृति।

१६ पूजा (षोडसपूजा) आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, फिर से आचमन, स्नान, वस्त्राभूषण, गन्ध पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वन्दना।

